इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

BSKLA - 135

संस्कृत भाषा और साहित्य

संस्कृत वाचन और विविध विषय 2

साहित्य का आस्वादन 3

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

प्रो. वाचस्पति उपाध्याय

प्रो. अवनीन्द्र कुमार

प्रो. वी. कुटुम्ब शास्त्री

प्रो. श्रीनारायण मिश्र

प्रो. जगदम्बा प्रसाद सिन्हा

प्रो. दीप्ति त्रिपाठी

प्रो. देवेन्द्र मिश्र

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय
कुलपति, श्री लाल बहादुर शास्त्री
राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली

प्रो. रमाकान्त पाण्डेय
निदेशक, मुक्त स्वाध्याय पीठ
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान,
नई दिल्ली

प्रो. आनन्द कुमार श्रीवास्तव
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, कला संकाय
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ. रंजन कुमार त्रिपाठी
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. देवेश कुमार मिश्र
सहायक प्रोफेसर, मानविकी विद्यापीठ
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी

प्रो. सत्यकाम
निदेशक, मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, मैदानगढ़ी, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पाठ लेखक	**इकाई संख्या**
डॉ. शशि तिवारी	खंड 2 (इकाई 6)
प्रो. रामकिशोर शर्मा	खंड 2 (इकाई 7)
डॉ. दुर्गा प्रसाद मिश्र	खंड 2 (इकाई 8)
डॉ. श्रीवत्स	खंड 3 (इकाई 9)
डॉ. ललित कुमार झा	खंड 3 (इकाई 10,11)

पाठ्यक्रम संयोजक
प्रो. सत्यकाम

सुश्री अर्पिता त्रिपाठी
(परामर्शदाता संस्कृत)

आवरण : सुश्री अरविन्दर चावला, ए.डी.ए. ग्राफिक्स, नई दिल्ली

सामग्री निर्माण

श्री. के. एन. मोहनन
सहायक कुलसचिव (प्रकाशन)
सा. नि. वि. प्र., इग्नू, नई दिल्ली

श्री. सी. एन. पाण्डेय
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)
सा. नि. वि. प्र., इग्नू, नई दिल्ली

श्री. बाबूलाल रेवाड़िया
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)
सा. नि. वि. प्र., इग्नू, नई दिल्ली

जुलाई, 2019

©इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2019

ISBN-978-93-89200-35-5

सर्वाधिकार सुरक्षित, इस कार्य का कोई भी अंश इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

मानविकी विद्यापीठ एवं इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के बारे में विश्वविद्यालय कार्यालय मैदान गढ़ी नई दिल्ली से अधिक जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से कुलसचिव, सामग्री निर्माण एवं वितरण प्रभाग द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

लेजर टाइप सेटिंग : टेसा मीडिया एण्ड कंप्यूटर, C-206, A.F. Encalve-II, नई दिल्ली

मुद्रक : आकाशदीप प्रिंटर्स, 20—अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली—110002

खंड

2

संस्कृत वाचन और विविध विषय

इकाई 6

संस्कृति विषयक पाठ 5

इकाई 7

सामाजिक विज्ञान आधारित पाठ 25

इकाई 8

विज्ञान आधारित पाठ 43

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

खंड परिचय

संस्कृत भाषा की मूलभूत प्रवृत्तियों को समझने के बाद इस खंड का उद्देश्य आपको संस्कृत वाङ्मय में वर्णित विभिन्न प्रकार के विषयों से परिचित कराना है।

इस दृष्टि से इस खंड की तीन इकाइयों में क्रमशः संस्कृति, सामाजिक विज्ञान एवं विज्ञान से सम्बद्ध कुछ प्रसिद्ध ग्रन्थों के उपयोगी अंशों के माध्यम से आप संस्कृत की समृद्ध परम्परा जान सकेंगे। वास्तव में संस्कृत वाङ्मय इतना समृद्ध और विशाल है कि जो कुछ संस्कृत में है वह कहीं और भी हो सकता है और जो इसमें नहीं है, उसके कहीं और मिलने की सम्भावना भी क्षीण है।

ग्रन्थों से अंशों को लेते समय यह प्रयत्न रहा है कि सरल और सुबोध अंश ही लिये जायें, फिर भी तकनीकी और कठिन शब्दों को समझाने के लिये प्रत्येक इकाई में शब्दावली दी गयी है। आशा है इस खंड को पढ़कर आप संस्कृत साहित्य की समृद्ध परम्परा से परिचित होंगे।

इकाई 6 संस्कृति विषयक पाठ

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 भारतीय संस्कृति का परिचय

6.3 भर्तृहरि का नीतिशतक

6.4 कठोपनिषद् : परिचय, कथा, सांस्कृतिक मूल्य

6.5 कठोपनिषद् – पाठ्य अंश – प्रथम वर

6.6 कठोपनिषद् – पाठ्य अंश – द्वितीय वर

6.7 कठोपनिषद् – पाठ्य अंश – तृतीय वर

6.8 सारांश

6.9 शब्दावली

6.10 अभ्यास प्रश्न

6.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.0 उद्देश्य

संस्कृत में आधुनिक भारतीय भाषा पाठ्यक्रम से सम्बन्धित दूसरे खंड की यह पहली इकाई है।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- संस्कृत साहित्य के आधार पर भारतीय संस्कृति को परिभाषित कर सकेंगे।
- संस्कृत साहित्य में वर्णित भारतीय संस्कृति के कुछ महत्त्वपूर्ण तत्त्वों को समझकर अपने शब्दों में प्रकट कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

संस्कृत के आधुनिक भारतीय भाषा पाठ्यक्रम के दूसरे खंड 'संस्कृत वाचन और विविध विषय' में आप ज्ञान-विज्ञान के विविध विषयों का अध्ययन करेंगे। इस खंड में भारतीय ज्ञान-विज्ञान-विषयक संस्कृत की रचनाओं से इकाइयों का संकलन किया गया है। खंड की यह प्रथम इकाई 'भारतीय संस्कृति' विषय से सम्बन्धित है।

संस्कृति विविध रूपों जैसे साहित्य, संगीत, धर्म, दर्शन, कला आदि के द्वारा अपने को अभिव्यक्त करती है। इसका सीधा सम्बन्ध व्यक्ति और समाज से होता है। किसी देश की सांस्कृतिक परम्परायें उसके साहित्य में प्रतिबिम्बित होती रहती हैं। भारत एक प्राचीन देश है। उसकी संस्कृति जितनी पुरानी है उतना ही पुराना उसका संस्कृत साहित्य है। इसीलिए संस्कृत के ग्रन्थों के माध्यम से परम्परागत भारतीय संस्कृति के स्वरूप को जानना और समझना सरल है।

भारतीय संस्कृति की चर्चा करने वाले संस्कृत-ग्रन्थों और उनके अंशों को दो भागों में रखा जा सकता है –

(क) जिनमें मुख्य रूप से सांस्कृतिक विचारों के विवरण हैं।

(ख) जिनमें मुख्य विषय न होने पर भी यत्र-तत्र सांस्कृतिक परम्पराओं के उल्लेख हैं। इस इकाई में दोनों प्रकार के साहित्य से अंशों का चयन किया गया है।

(क) भर्तृहरि का नीतिशतक – इसके चार श्लोकों के पाठ, अर्थ, व्याख्या आदि के द्वारा भारतीय संस्कृति के कुछ महत्त्वपूर्ण विचारों की जानकारी करायी गयी है।

(ख) कठोपनिषद् – इस उपनिषद् के एक कथापूर्ण अंश के पाठ, अर्थ, व्याख्या आदि के द्वारा भारतीय संस्कृति के एक विशेष तत्त्व 'पुरुषार्थ-चतुष्टय' की जानकारी संक्षेप में कराई गयी है।

संस्कृति से सम्बन्धित इन अंशों के अध्ययन से पहले पृष्ठभूमि के रूप में भारतीय संस्कृति के स्वरूप, तत्त्वों और विशेषताओं का परिचय भी कराया जा रहा है।

6.2 भारतीय संस्कृति का परिचय

संस्कृत भाषा में सम् उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु में 'क्तिन्' प्रत्यय के योग से 'संस्कृति' शब्द निष्पन्न होता है। इस व्युत्पत्ति से संस्कृति शब्द 'परिष्कृत कार्य' अथवा 'उत्तम स्थिति' का बोध कराता है। वास्तव में इस शब्द का भावार्थ अत्यन्त व्यापक है। मन और आत्मा की तृप्ति के लिए मनुष्य जो विकास या उन्नति करता है वह सब संस्कृति के अन्तर्गत आता है। अतः मानसिक स्तर पर मनुष्य की प्रत्येक सम्यक् कृति संस्कृति का अंग है। इसमें मुख्य रूप से मनुष्य के द्वारा विकसित सभी कला, ज्ञान-विज्ञान, धर्म, दर्शन, परम्परायें, आचार-विचार तथा सामाजिक मान्यताओं का समावेश किया जाता है। यह मनुष्य को मनुष्य बना देने वाले विशिष्ट तत्त्वों में श्रेष्ठ है। संस्कृति वह आधारशिला है जिसके आश्रय से समाज उत्तम स्वरूप को प्राप्त करता है। संस्कृति की एक निश्चित परिभाषा देना कठिन है; क्योंकि इसका स्वरूप बहुत व्यापक और विशाल है।

संस्कृति सभ्यता से भिन्न है। यदि सभ्यता का तात्पर्य मनुष्य के रहन-सहन और सुखी जीवन के साधनों से है तो संस्कृति का सम्बन्ध चिन्तन-मनन और आचार-विचार से है। संस्कृति आन्तरिक उन्नति है तो सभ्यता भौतिक उन्नति। इसीलिए संस्कृति को अपनाया जाता है जबकि सभ्यता का अनुकरण किया जा सकता है।

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीन और महान् संस्कृतियों में से एक है। उसका प्रारम्भिक रूप वेदों से प्राप्त होता है। संसार का प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद है। इससे भारतीय संस्कृति का जो प्रवाह आरम्भ हुआ वह आज अटूट रूप से प्रवाहित है। समय के साथ भारतीय समाज की परिस्थितियाँ बदलती रहीं परन्तु अपनी गतिशीलता के गुण के कारण भारतीय संस्कृति का मूल रूप वैसा ही बना रहा। संस्कृति के निर्माण और विकास में महर्षियों, कवियों, विद्वज्जनों और सामान्य जनों ने अपनी-अपनी भूमिका निभाई है। भारत की समस्त महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक परम्पराओं और मान्यताओं को देश के प्राचीन साहित्य में अच्छी तरह देखा जा सकता है। वैदिक संहिताओं, उपनिषदों, स्मृतियों, रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों में गहराई से इनकी स्थापना की गयी है। बाद में संस्कृत कवियों और आचार्यों ने सुभाषितों, महाकाव्यों, कविताओं, कथाओं और नाटकों आदि के द्वारा इन्हीं सांस्कृतिक आदर्शों और मानवीय गुणों को सरल रूप में प्रस्तुत किया।

भारतीय संस्कृति के तत्त्वों के अन्तर्गत पारिवारिक सौहार्द, संस्कार, आश्रम-व्यवस्था, यम-नियम, पुरुषार्थ-चतुष्टय आदि को सम्मिलित किया गया है। भारतीय संस्कृति की विशेषतायें अनेक हैं। अनेकता में एकता देखना और समन्वय की प्रवृत्ति उनमें मुख्य है।

इसमें मानव के सम्पूर्ण विकास का ध्यान रखा जाता है। भौतिक, शारीरिक, आध्यात्मिक, मानसिक सभी प्रकार के विकास को समान रूप से महत्त्व दिया जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि अध्यात्म की भावना भारतीय संस्कृति की एक प्रमुख विशेषता है। मानव को पुरुषार्थी बनाना भारतीय संस्कृति का उद्देश्य है। यहाँ मनुष्य के जीवन के सभी लक्ष्यों को 'पुरुषार्थ' नाम दिया गया है। ये चार हैं – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। ये चारों मानव के लिए परम उपयोगी हैं। 'धर्म' एक व्यापक शब्द है परन्तु इसका साधारण तात्पर्य मनुष्य के कर्तव्यों से है जो सभी के उत्थान में सहायक हो; वह 'धर्म' कहलाता है। 'अर्थ' से धन-सम्पत्ति और समृद्धि का तात्पर्य है। इससे एक सुखी जीवन का भाव लिया जा सकता है। 'काम' का अभिप्राय कामनाओं से है। इसके बिना कुछ भी सम्भव नहीं। शुभ संकल्प काम का शुद्ध रूप है। संसार के बन्धन से मुक्ति पाना परम सुख है। 'मोक्ष' इसी का नाम है। यह चरम पुरुषार्थ है। आचार्यों ने इसकी तरह-तरह से व्याख्या की है। उपनिषदों में बताया गया है कि आत्मा के ज्ञान से मोक्ष प्राप्त होता है। धर्म और मोक्ष पर बल देकर भी भारतीय संस्कृति ने अर्थ और काम को आवश्यक माना है।

सर्वजनहित या विश्वबन्धुत्व की भावना भारतीय संस्कृति का सार है। इसमें सबके सुख की कामना की जाती है –

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्।।

अर्थात् सभी सुखी हों, सभी निरोग हों, सभी कल्याण को देखें और कोई भी दुःख को प्राप्त न करे।

बोध प्रश्न 1

(i) नीचे दिये गये कथनों में से कुछ सही हैं, कुछ गलत। अपना उत्तर चुनकर उसे 'ठीक' चिह्न द्वारा दिखाइये।

क) 'संस्कृति' शब्द सम् पूर्वक कृ धातु में क्तिन् प्रत्यय के योग से बना है।

सही ☐ गलत ☐

ख) संस्कृति और सभ्यता एक ही है।

सही ☐ गलत ☐

ग) संस्कृति का स्वरूप व्यापक और विशाल है।

सही ☐ गलत ☐

घ) शुभ संकल्प 'अर्थ' का शुद्ध रूप है।

सही ☐ गलत ☐

ङ) आत्मा के ज्ञान से मोक्ष प्राप्त होता है।

सही ☐ गलत ☐

(ii) नीचे बायीं तरफ दिये गये शब्दों को दायीं तरफ दिये गये सही शब्दों से जोड़िए।

क) संस्कृति	क) ऋग्वेद
ख) सभ्यता	ख) धन सम्पत्ति
ग) प्राचीन ग्रन्थ	ग) रहन-सहन

घ) अर्थ घ) सम्यक् कृति

(iii) **इकाई के कुछ वाक्य नीचे दिये गये हैं। इन वाक्यों के तात्पर्य को दिये गये तीन कथनों में से एक सबसे सही रूप में व्यक्त करता है। उस कथन को बताइये।**

1. संस्कृति आन्तरिक उन्नति है तो सभ्यता भौतिक उन्नति।

   क) संस्कृति से मनुष्य के अन्दर की उन्नति होती है जिसमें उसके मन, बुद्धि और उनसे जुड़े मनन-चिन्तन आते हैं तो सभ्यता से उसके बाहर की उन्नति होती है जिसमें उसका शरीर और उससे जुड़े रहन-सहन आते हैं।

   ख) संस्कृति मनुष्य की अंदरूनी उन्नति करती है। जबकि सभ्यता उसकी बाहरी उन्नति करती है।

   ग) संस्कृति का सम्बन्ध मन और बुद्धि की उन्नति के साधनों से है तो सभ्यता का सम्बन्ध सुखी जीवन के साधनों से है।

2. मानव को पुरुषार्थी बनाना भारतीय संस्कृति का उद्देश्य है।

   क) 'पुरुषार्थ' का अर्थ है – मनुष्य का लक्ष्य। ये चार हैं – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। भारतीय संस्कृति सिखलाती है कि मनुष्य को इन चारों को ही पाने का सदा प्रयत्न करना चाहिए।

   ख) मनुष्य को लगातार परिश्रमशील बनाना भारतीय संस्कृति का प्रयोजन है।

   ग) भारतीय संस्कृति मनुष्य को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक चार पुरुषार्थ को प्राप्त करने की प्रेरणा देती है।

3. विश्वबन्धुत्व की भावना भारतीय संस्कृति का सार है।

   क) संक्षेप में भारतीय संस्कृति सबके बीच भाई-चारे की भावना का पाठ पढ़ाती है।

   ख) सबमें अपनेपन का भाव रखना भारतीय संस्कृति का मुख्य उद्देश्य है।

   ग) बिना किसी भेदभाव के सभी मनुष्यों में भाईचारे की भावना रखना और सबके कल्याण की कामना करना भारतीय संस्कृति का मूलतत्त्व है।

6.3 भर्तृहरि का नीतिशतक

प्राचीन संस्कृत कवियों में भर्तृहरि का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है। इनका समय अनिश्चित है पर इनके जीवन से जुड़ी कुछ जनश्रुतियाँ मिलती हैं, जिनसे इनके जीवन के बारे में कुछ बातें पता चलती हैं। ये एक नीतिकुशल प्रजापालक राजा थे। इनको संसार का विशाल अनुभव था। इन्होंने कई ग्रन्थों की रचना की; जिनमें श्रृंगारशतक, वैराग्यशतक और नीतिशतक अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। ये काव्य मुक्तक श्लोकों में लिखे गये हैं। नीतिशतक में उत्तम गुणों का उपदेश है जो मनुष्य के जीवन के लिए पथप्रदर्शक हैं और भारतीय संस्कृति के आदर्श हैं। यहां इकाई के लिए केवल चार श्लोकों का चयन किया गया है पहले मूल श्लोक दिया गया है, फिर उसका अन्वय प्रस्तुत किया गया है; तत्पश्चात् उसका हिन्दी अनुवाद और व्याख्या दी गयी है। अन्त में टिप्पणी है जिसमें कुछ शब्दों पर संस्कृत-व्याकरण की दृष्टि से विचार किया गया है।

1. **येषां न विद्या न तपो न दानं, ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।**
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूताः, मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।

अन्वय–येषां विद्या न, तपः न, दानं न, ज्ञानं न, शीलं न, गुणः न, धर्मः (न) ते मर्त्यलोके भुवि भारभूताः मृगाः मनुष्यरूपेण चरन्ति।

अर्थ :– जिन मनुष्यों के पास विद्या नहीं है, तपस्या नहीं है, दान नहीं है, ज्ञान नहीं है, शील नहीं है, गुण नहीं है, और धर्म नहीं है, वे मनुष्य लोक में भूतल पर भाररूप पशु हैं, जो मनुष्य के रूप में विचरण करते हैं।

व्याख्या :–मनुष्य का पशु से भेद कुछ विशेष गुणों के कारण होता है। यदि उसमें वे गुण होते हैं तभी वह मनुष्य कहलाता है नहीं तो वह पशु जैसा ही है। पशु अपने स्वरूप में किसी न किसी दृष्टि से उपयोगी हो सकता है किन्तु गुणहीन मनुष्य केवल पृथ्वी का भार बढ़ाता है मनुष्य को मनुष्य बनाने वाली विशेषतायें हैं – विद्या, तपस्या, दान, ज्ञान, शील, उदात्त गुण और धर्म। विविध विषयों की शिक्षा पाना विद्या है। परिश्रम करना तपस्या है। जरूरत पर किसी को देना दान है । उचित और अनुचित को समझ पाना ज्ञान है। अच्छा आचरण शील है। दया, उदारता आदि गुण हैं। सत्य, अहिंसा, उपकार आदि धर्म है। भारतीय संस्कृति में इन गुणों पर विशेष बल दिया गया है। ये मनुष्य के व्यक्तित्व को महान् बनाते हैं।

टिप्पणी :–

मर्त्यलोके – **मर्त्यानां लोकः मर्त्यलोकः, तस्मिन्** (षष्ठी तत्पुरुष समास)

मनुष्यरूपेण – **मनुष्याणां रूपम्, तेन** (षष्ठी तत्पुरुष समास)

भारभूताः – **भार एव भूताः** (कर्मधारय)

चरन्ति – **चर् धातु** (चलना), लट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन

2. **केयूराणि न भूषयन्ति पुरुषं, हारा न चन्द्रोज्ज्वलाः,**
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्द्धजाः।
वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते,
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं, वाग्भूषणं भूषणम्।।

अन्वय :– केयूराणि पुरुषं न भूषयन्ति, चन्द्रोज्ज्वलाः हाराः न, स्नानं न, विलेपनं न, कुसुमं न, अलङ्कृताः मूर्धजाः न। एका वाणी पुरुषं समलङ्करोति या संस्कृता धार्यते। भूषणानि खलु क्षीयन्ते, वाग्भूषणं सततं भूषणम्।

अर्थ :– बाजूबन्द मनुष्य को अलंकृत नहीं करते हैं, न ही चन्द्रमा के समान चमकने वाले उज्ज्वल हार, न स्नान, न लेपन, न पुष्प और न संवारे हुए बाल ही। एकमात्र वाणी ही मनुष्य को सजाती है, जो परिष्कृत रूप से प्रयोग की जाती है। सारे आभूषण निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं, परन्तु वाणी का आभूषण निरन्तर रहने वाला आभूषण है।

व्याख्या :– यहाँ विद्या से सम्पन्न होकर शुद्ध की गयी वाणी का महत्त्व बताया गया है। पढ़े लिखे व्यक्ति की वाणी उसको सही अर्थ से संवारती है, इस कारण वह उसके लिए आभूषण जैसी है। शरीर को सुशोभित करने के लिए मनुष्य कुछ पदार्थों और आभूषणों का प्रयोग करता है, जैसे बाजूबन्द, चमकीले हार आदि पहनना, स्नान करना, कुंकुम आदि लेप लगाना, पुष्प धारण करना और सुन्दर तरह से केश संवारना। परन्तु ये सब समय के साथ क्षीण हो जाते हैं। जबकि विद्या से युक्त वाणी का आभूषण सदा पास रहता है। वाणी द्वारा मनुष्य

अपने विचारों को प्रकट करते हैं। इससे उसके व्यक्तित्व की झलक मिलती है। इसलिए भारतीय संस्कृति में परिष्कृत वाणी की प्रशंसा की जाती है।

टिप्पणी :–

चन्द्रोज्ज्वलाः – **चन्द्र इव उज्ज्वलाः** । (कर्मधारय समास)

वाग्भूषणम् – **वाग् एव भूषणम्।**

भूषयन्ति – **भूष्** धातु (सजाना), चुरादिगण, लट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

संस्कृता – **सम्** उपसर्ग + **कृ** धातु (करना) + क्त प्रत्यय + **टाप्** प्रत्यय । (शुद्ध की गयी)

3. **दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।**
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति।।

अन्वय :– वित्तस्य दानं भोगः नाशः तिस्रः गतयः भवन्ति। यः न ददाति, न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिः भवति।

अर्थ :– धन की तीन अवस्थायें होती हैं – दान, भोग और नाश।

जो व्यक्ति न दान करता है, न भोग करता है, उसके धन की तीसरी गति अर्थात् नाश होती है।

व्याख्या :– मनुष्य के जीवन में धन का बहुत महत्त्व है। भारतीय संस्कृति में इसको दूसरा पुरुषार्थ माना गया है। धन सुखी जीवन का एक सुखी साधन है इसीलिए इसका सही प्रयोग करना आवश्यक है। अपने लिए उसका उपयोग करके जीवन को सुखी बनाया जा सकता है– यह भोग है। जहाँ किसी को धन की जरूरत है तो उपकार की भावना से उसको दिया जा सकता है यह दान है। इस तरह अपने लिए और दूसरों के लिए धन का उचित प्रयोग करना चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो धन किसी भी प्रकार नष्ट होकर तीसरी अवस्था नाश को प्राप्त हो जाता है।

टिप्पणी :–

ददाति – **दा** धातु (देना), परस्मैपद, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

भुङ्क्ते – **भुज्** धातु (उपभोग करना), आत्मनेपद, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

4. **निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु**
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्यायात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।।

अन्वय :– यदि नीतिनिपुणाः निन्दन्तु वा स्तुवन्तु, लक्ष्मीः समाविशतु वा यथेष्टं गच्छतु, मरणम् अद्य एव वा युगान्तरे वा अस्तु, धीराः न्यायात् पथः पदं न प्रविचलन्ति।

अर्थ :– नीतिकुशल मनुष्य उनकी निन्दा करें या स्तुति, सम्पत्ति आये या जहां चाहे चली जाये, मृत्यु आज ही आ जाये या एक युग के बाद आये, धैर्यवान् मनुष्य न्याय के मार्ग से एक कदम भी विचलित नहीं होते हैं।

व्याख्या :– भारतीय संस्कृति में 'न्याय' का बड़ा महत्त्व है। उत्तम पुरुष उस पर दृढ़ रहते हैं। वे 'धीर' कहलाते हैं। ऐसे धैर्यशाली महापुरुष किसी भी स्थिति में न्यायसंगत मार्ग को

नहीं छोड़ते हैं। नीति में कुशल लोग भले ही उनके कार्यों की निन्दा करें या प्रशंसा, वे उचित मार्ग से हटते नहीं हैं। इसी तरह सम्पत्तियां उनके पास रहेंगी या कि उनके कार्यों से चली जायेंगी इसकी भी वे चिन्ता नहीं करते हैं। उनके लिए तो मृत्यु भी कोई भय पैदा नहीं कर पाती। उचित और अनुचित में से अच्छी तरह तय किया गया उचित मार्ग 'न्याय मार्ग' कहलाता है।

टिप्पणी :–

नीतिनिपुणाः – **नीतौ निपुणाः इति नीतिनिपुणाः।** (सप्तमी तत्पुरुष समास)

युगान्तरे – **अन्यः युगः युगान्तरम्, तस्मिन्।** (मयूरव्यंसकादि समास)

यथेष्टम् – **इष्टमनतिक्रम्य यथेष्टम्।** (अव्ययीभाव समास)

समाविशतु – **सम्** उपसर्ग, **आ** उपसर्ग, **विश्** धातु (घुसना), लोट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

बोध प्रश्न 2

(i) **रिक्त स्थान पर सही शब्द लिखकर निम्नलिखित वाक्यों को पूरा कीजिए।**

क) नीतिशतक में उत्तम गुणों का ....है।

ख) .... ने तीन शतक लिखे।

ग) भर्तृहरि एक प्रजापालक .... थे।

घ) गुणहीन मनुष्य .... जैसा होता है।

ङ) मनुष्य का एकमात्र आभूषण अच्छी .... है।

च) .... न्यायपथ से नहीं हटते हैं।

छ) दान, भोग और नाश – धन की तीन .... हैं।

ज) अच्छा आचरण .... कहलाता है।

(झ) लक्ष्मी का अर्थ......................है।

ञ) तपस्या का अर्थ...........................है।

(ii) नीतिशतक में मनुष्य के वे कौन से गुण बताये गये हैं, जिनके बिना वह पशु जैसा हो जाता है।

(iii) **निम्नलिखित शब्दों को उनके सही अर्थों से जोड़िए।**

क)	केयूर	क)	धन
ख)	ज्ञान	ख)	केश
ग)	मूर्धजा	ग)	बाजूबन्द
घ)	वित्त	घ)	मार्ग
ङ)	पथ	ङ)	समझ

(iv) **निम्नलिखित वाक्यों का हिन्दी में अनुवाद कीजिए।**

क) क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्।

ख) यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति।

ग) न्यायात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।

6.4 कठोपनिषद् : परिचय, कथा, सांस्कृतिक मूल्य

उपनिषद् वेदों के अन्तिम भाग हैं। ये ज्ञानकाण्ड कहलाते हैं क्योंकि इनका मुख्य विषय ब्रह्मज्ञान है। इनमें अध्यात्म और मानवतावाद को अधिक महत्त्व दिया गया है। ज्ञान के साथ-साथ उपनिषदों में भारतीय सांस्कृतिक आदर्श भी कूट-कूट कर भरे हुए हैं। प्रमुख उपनिषद् ग्यारह माने जाते हैं। जिनमें कठोपनिषद् सर्वाधिक प्रसिद्ध है। यह कृष्ण यजुर्वेद की कठ शाखा से सम्बन्धित है। इस पर आदि आचार्य शंकर ने भाष्य भी लिखा है।

कठोपनिषद् का प्रारम्भ एक आख्यान से होता है, जिसे नचिकेतोपाख्यान कहते हैं। कथा को आधार बनाकर इस उपनिषद् में यम ने नचिकेता को ज्ञान का उपदेश दिया है। उपनिषद् की कथा की विवेचना करने पर कई प्राचीन आदर्श सामने आते हैं, जिनसे भारतीय संस्कृति के मूल्यों की झलक मिलती है। इस इकाई में कठोपनिषद् के प्रथम अध्याय की प्रथम वल्ली के अठारह मन्त्रों को वाचन और व्याख्या के लिये लिया गया है। मूलमन्त्र के बाद अन्वय और अनुवाद को एक साथ प्रस्तुत किया गया है, जिससे प्रत्येक शब्द के अर्थ को जानना सरल है। इसके अनन्तर मन्त्र के तात्पर्य को व्याख्या के द्वारा समझाया गया है।

इकाई के वाचन और व्याख्या से पहले नचिकेता के आख्यान को संक्षेप में दिया जा रहा है। कथा के बाद उसमें निहित सांस्कृतिक मूल्यों की चर्चा भी की गयी है। कथा के अनुसार वाजश्रवा के पुत्र वाजश्रवस् ने यज्ञ किया। वाजश्रवस् के एक पुत्र था नचिकेता, जो अभी बालक था। इस विश्वजित् नामक यज्ञ में उन्होंने अपना सब कुछ दान में दे दिया किन्तु लोभवश उत्तम गायों को रोक लिया और उसके बदले में बूढ़ी गायों को दान में दे दिया। यह देखकर नचिकेता के मन में श्रद्धा उमड़ी। उसने सोचा कि पिता अदेय वस्तु दान कर रहे हैं, जो ठीक नहीं है। उसने पिता से पूछा, 'आप मुझे किसको देंगे?' पिता के उत्तर न देने पर उसने यह प्रश्न तीन बार पूछा। तब पिता ने झुंझलाकर कहा, 'मैं तुम्हें मृत्यु को देता हूँ'। कहने के बाद पिता को अपने वचनों पर दुःख हुआ परन्तु नचिकेता ने पिता को अपनी बात पर दृढ़ रहने को कहा और उनकी आज्ञा का पालन करने के लिए यमराज के घर पहुंच गया। जिस समय वह यमराज के घर पहुंचा, वे घर पर नहीं थे। उसने तीन रात्रियों तक यमराज की प्रतीक्षा की। जब यमराज घर लौटे तो उन्हें सूचना दी गयी कि आपके घर पर तीन दिनों से एक अतिथि बिना खाये-पिये बैठा है। यमराज ने नचिकेता की सेवा की और कहा, 'आपने तीन रात्रियों तक मेरी प्रतीक्षा की है, अतः उसके बदले में तीन वर मांग लें'।

नचिकेता ने प्रथम वर मांगा कि मेरे पिता की चिन्ता दूर हो जाये, वे मेरे प्रति क्रोधरहित हो जायें और मेरे लौटने पर मुझे पहचान कर मेरा स्वागत करें। यम ने उसका यह वर स्वीकार कर लिया। अब यमराज ने नचिकेता से दूसरा वर मांगने को कहा। नचिकेता ने दूसरे वर के द्वारा स्वर्ग को दिलाने वाली अग्नि अर्थात् यज्ञ के बारे में जानना चाहा। यम ने नचिकेता को सारी जानकारी दी जिसको नचिकेता ने याद कर के सुना भी दिया। प्रसन्न होकर यम ने कहा कि लोग आज से इस अग्नि को नचिकेता के नाम से ही जानेंगे। इसके बाद यम ने तीसरा वर मांगने को कहा। नचिकेता ने पूछा, 'मरने के बाद मनुष्य का क्या होता है? कुछ कहते हैं कि वह रहता है और कुछ कहते हैं कि वह नहीं रहता है – यह मैं आप से जान सकूं, यही मेरा तीसरा वर है'। यमराज ने नचिकेता को समझाया कि यह एक सूक्ष्म विषय है। इसको तो देवता भी नहीं जानते हैं; अतः कुछ और मांग लो। यमराज ने नचिकेता को अनेक प्रलोभन दिये, किन्तु वह अपनी बात पर अडिग रहा। उसकी सच्ची जिज्ञासा से सन्तुष्ट होकर यमराज ने उसे आत्मज्ञान का उपदेश दिया, जो इस उपनिषद् का मुख्य विषय है। इस प्रकार कठोपनिषद् की कथा का मूल्यांकन भारतीय संस्कृति के कई अन्य पक्षों पर भी प्रकाश डालने में समर्थ है।

इस कथा से हम भारतीय संस्कृति के चार पुरुषार्थों को संक्षेप में समझ सकते हैं। नचिकेता का प्रथम वर पिता की प्रसन्नता से जुड़ा हुआ है, जिसे पारिवारिक सुख भी कहा जा सकता है। यह बताता है कि मनुष्य का धर्म है कि वह अपने माता-पिता और अन्य गुरूजनों का आदर करे, उनके आदेश का पालन करे और उनका ध्यान रखे। अतिथि-सत्कार का महत्त्व भी इसमें मिलता है। दूसरा वर स्वर्ग की प्राप्ति की चर्चा करता है। भारतीय संस्कृति में बल दिया गया है कि मनुष्य को अच्छे कर्म करने चाहिए; क्योंकि उसी आधार पर अगला जन्म मिलता है। स्वर्ग उसी का सुन्दर रूप है। तीसरा वर आत्मज्ञान से सम्बन्धित है। इसका उपदेश देने से पहले यमराज ने नचिकेता को संसार के अनेक भोगों का प्रलोभन दिया; जैसे राज्य, धन, भूमि, आयु, वाहन, स्त्री, गीत-नृत्य आदि। नचिकेता ने इन सब को स्वीकार नहीं किया, पर साथ ही यह भी कहा कि जितना धन और जितनी आयु चाहिये वह तो आपके दर्शन से मिल ही जायेगी। वरदान में तो मुझे ज्ञान ही चाहिये। इससे स्पष्ट होता है कि उपनिषद् सांसारिक सुखों को ठुकराने की बात नहीं कर रहा है। अर्थ और काम भी जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण पुरुषार्थ हैं। मोक्ष मनुष्य के जीवन का प्रधान लक्ष्य है और आत्मज्ञान मोक्ष का आधार है इसलिए नचिकेता ने उसी की जिज्ञासा की। गुरु और शिष्य के मधुर सम्बन्ध और जीवन में बुद्धि की महत्ता भी इस कथा में दिखाई गयी है। कथा के कई आदर्श आज के युवावर्ग के लिए अनुकरणीय हैं।

बोध प्रश्न 3

भारतीय सांस्कृतिक परम्परा की इस इकाई में आपके लिए कठोपनिषद् के उस अंश को चुना गया है, जिसमें एक रोचक कथा है और उसके द्वारा भारतीय संस्कृति-सम्बन्धी कुछ तथ्यों पर भी प्रकाश पड़ता है यहाँ कथा के द्वारा व्यक्त हुए विचारों को बताने वाले कुछ वाक्य दिये गये हैं। आप कोष्ठक में दिये शब्दों में से सही शब्द को रखें और गलत को हटा दें, जिससे वाक्य सार्थक बन जाए।

(i) उपनिषदों का मुख्य विषय ब्रह्मज्ञान/विज्ञान है।

(ii) उपनिषदों में कठोपनिषद् अल्प/सर्वाधिक प्रसिद्ध है।

(iii) प्रमुख उपनिषद् चौदह/ग्यारह माने जाते हैं।

(iv) कठोपनिषद् में यमराज/नचिकेता ने ज्ञान का उपदेश दिया है।

(v) नचिकेता वाजश्रवा ऋषि का शिष्य/पुत्र था।

(vi) नचिकेता के तीन बार पूछने पर पिता शान्त/क्रोधित हो गए।

(vii) नचिकेता ने तीन रात्रियों तक पिता/यमराज की प्रतीक्षा की।

(viii) यमराज ने अतिथि का उपकार/सत्कार किया।

(ix) नचिकेता ने सर्वप्रथम पिता की प्रसन्नता/सम्पत्ति का वर मांगा।

(x) नचिकेता ने दूसरे वर में दी गयी सारी जानकारी को यमराज को याद करके/लिखकर सुना दिया।

(xi) स्वर्ग दिलाने वाली अग्नि का नाम यमराज/नचिकेता पड़ा।

(xii) यमराज ने नचिकेता को तीसरे वर में आत्मज्ञान का उपदेश देने से पहले कई उपकरण/प्रलोभन दिये क्योंकि वे उसकी सच्ची अभिलाषा/जिज्ञासा की परीक्षा लेना चाहते थे।

(xiii) उपनिषद् के अनुसार सांसारिक सुखों को अपनाना/ठुकराना चाहिए।

(xiv) जीवन में बुद्धि की सत्ता/महत्ता इस कथा में दिखाई गयी है।

(xv) शिष्य को गुरू से निर्भीक/भयभीत होकर आदरपूर्वक बातचीत करनी चाहिए।

6.5 कठोपनिषद् - पाठ्य अंश - प्रथम वर

ऊँ उशन् ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ।
तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस ।।1।।

अन्वय और अर्थ :– **ऊँ**=ओम् नाम परमात्मन्, **ह वै** = प्रसिद्ध है कि, **उशन्**= (यज्ञ का) फल चाहने वाले, **वाजश्रवसः** = वाजश्रवा के पुत्र ने, **सर्ववेदसम्** = (यज्ञ में) अपना सारा धन, **ददौ** = दे दिया, **तस्य** = उनका, **नचिकेता** = नचिकेता, **नाम ह** = नाम से प्रसिद्ध, **पुत्र आस** = एक पुत्र था।

व्याख्या :– उपनिषद् के इस प्रथम मन्त्र में ओम् नाम से परमात्मा का स्मरण किया गया है। वाजश्रवस् ने विश्वजित् नामक यज्ञ किया था, जिसमें अपना सब कुछ दान में देना पड़ता है। उनका नचिकेता नाम का एक पुत्र था।

तं ह कुमारं सन्तं दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धाविवेश सोऽमन्यत ।।2।।

अन्वय और अर्थ :– **ह** = यह प्रसिद्ध है कि, **दक्षिणासु नीयमानासु** = दक्षिणा के रूप में (जीर्ण) गायें लाई जाने पर, **कुमारम्** = छोटा बालक, **सन्तम्** = होने पर भी, **तम्** = उस (नचिकेता) में, **श्रद्धा** = आस्तिकता रूप बुद्धि, **आविवेश** = उत्पन्न हुई, **सः** = वह, **अमन्यत** = विचार करने लगा।

व्याख्या :– नचिकेता के पिता यज्ञ के बाद ब्राह्मणों को दक्षिणा के रूप में गायें दान में देने लगे, जिनमें अधिकांश गायें बूढ़ी थीं। यह देखकर नचिकेता पिता के हित को ध्यान में रख सोचने लगा कि इस तरह तो पिता अपने यज्ञ के फल को नष्ट कर देंगे क्योंकि अदेय वस्तु के दान का पाप उन्हें लगेगा।

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः।
अनन्दा नाम ते लोकास्तान् स गच्छति ता ददत् ।।3।।

अन्वय और अर्थ :– **पीतोदकाः** = जो अन्तिम बार जल पी चुकी, **जग्धतृणाः** = जिनका घास खाना समाप्त हो चुका है, **दुग्धदोहाः** = जिनका दूध दुह लिया गया है, **निरिन्द्रियाः** = जिनकी इन्द्रियाँ शिथिल हो चुकी हैं, **ताः** = ऐसी (निरर्थक) गायों को, **ददत्** = देने वाला, **सः** = वह (तो), **ते लोकाः** = वे नरक आदि लोक, **आनन्दाः** = जो आनन्द से रहित, **नाम** = प्रसिद्ध हैं, **तान्** = उनको, **गच्छति** = प्राप्त होता है।

व्याख्या :–पिता उन गायों को दान में दे रहे हैं, जिन्होंने दूध देना बन्द कर दिया है। अतः इन गायों का दान निरर्थक है। पिता द्वारा अनुचित पदार्थ का दान देने के पाप के कारण उनको नरक आदि लोकों की प्राप्ति होगी और यज्ञ करने का सारा प्रयोजन समाप्त हो जायेगा। इसलिए पिता को इस कार्य से रोकना चाहिए। यह मेरा पिता के प्रति कर्तव्य है। यह सोचकर नचिकेता ने पिता को कहा।

स होवाच पितरं तात कस्मै मां दास्यसीति।
द्वितीयं तृतीयं तं होवाच मृत्यवे त्वा ददामीति ।।4।।

अन्वय और अर्थ :– **स ह** = वह, **पितरम्** = अपने पिता से, **उवाच** = बोला, **तात** = (तात) हे प्यारे पिता! **कस्मै** = किसको, **माम्** = मुझे, **दास्यसि इति** = देंगे। **द्वितीयम्** = दोबारा, **तृतीयम्** = तिबारा कहा, **तम् ह** = (तब पिता ने) उससे, **उवाच** = कहा, **त्वा** = तुझे (मैं), **मृत्यवे** = मृत्यु को, **ददामि इति** = देता हूँ।

व्याख्या :– नचिकेता ने पिता से निश्चयपूर्वक कहा कि 'हे तात! आप मुझे किसको देंगे? ऋषि पुत्र की पितृभक्ति से पूर्ण वचनों का अर्थ नहीं जान पाये और उसके बार-बार यही प्रश्न पूछने पर क्रोधित हो उठे। उन्होंने क्रोध के आवेश में उससे कहा 'मैं तुम्हें मृत्यु को देता हूँ' ऐसा कहने के बाद पिता को पश्चाताप होने लगा कि मैंने यह क्या कह डाला। उधर नचिकेता ने पिता को समझाना शुरू किया कि वे साधु पुरुषों के आचरण का अनुसरण करते हुए अपनी बात पर दृढ़ रहें। अनन्तर वाजश्रवस् ने पुत्र को मृत्यु के पास भेज दिया। यमराज के घर पर नचिकेता को तीन दिन तक प्रतीक्षा करनी पड़ी, क्योंकि वे कहीं बाहर गये हुये थे। नचिकेता ने तब तक अन्न-जल भी ग्रहण नहीं किया। वह घर के बाहर ही बैठा रहा। यमराज के लौटने पर उनकी पत्नी ने उनसे कहा–

वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहान्।
तस्यैतां शान्तिं कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम् ।।5।।

अन्वय और अर्थ :– **वैवस्वत** = हे सूर्यपुत्र, **वैश्वानरः** = स्वयं अग्निदेवता (ही), **ब्राह्मणः अतिथिः** = ब्राह्मण अतिथि के रूप में, **गृहान्** = घरों में, **प्रविशति** = प्रवेश करते हैं, **तस्य** = उनकी, **एताम्** = ऐसी (सेवा द्वारा), **शान्तिम्** = शान्ति (को), **कुर्वन्ति** = किया करते हैं (अतः आप), **उदकम्** = जल, **हर** = ले आइए।

व्याख्या :– यमराज विवस्वान् सूर्य के पुत्र हैं। उनको सम्बोधित करते हुए उनकी पत्नी ने अतिथि के सत्कार की महत्ता बताई और कहा कि यह बालक एक ब्राह्मण अतिथि के रूप में हम गृहस्थों के घर आया है। यह साक्षात् अग्निदेव का रूप है। अपने कल्याण के लिए हमें अतिथिरूप अग्निदेवता को शान्त करने के लिए उसे आसन, जल, फल, भोजन आदि देना चाहिए। आचार्य यम ने ऐसा ही किया। नचिकेता का आदर-सत्कार करने के बाद उन्होंने उसके समीप जाकर कहा –

तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मे अनश्नन् ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः।
नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन् स्वस्ति मेऽस्तु तस्मात्प्रति त्रीन् वरान् वृणीष्व ।।6।।

अन्वय और अर्थ :– **ब्रह्मन्** = हे ब्राह्मण, **नमस्यः** = नमस्कार करने योग्य, **अतिथिः** = अतिथि, **ते** = आपको, **नमः** = नमस्कार, **अस्तु** = हो, **ब्रह्मन्** = हे ब्राह्मण, **मे** = मेरा, **स्वस्ति** = कल्याण, **अस्तु** = हो, **यत्** = जो, **तिस्रः** = (आपने) तीन, **रात्रीः** = रात्रियों तक, **मे** = मेरे, **गृहे** = घर पर, **अनश्नन्** = बिना भोजन किये, **अवात्सीः** = निवास किया है, **तस्मात्** = इसलिए (आप मुझसे), **प्रति** = प्रत्येक रात्रि के बदले, **त्रीन् वरान्** = तीन वरदान, **वृणीष्व** = मांग लीजिए।

व्याख्या :– आप हमारे नमस्कार योग्य हैं, अतिथि हैं, ब्राह्मण हैं। आप हमारे घर पर बिना भोजन किये तीन रात्रियों तक रहे। यह मेरे लिये दुःख की बात है। अतः आपको प्रसन्न करने के लिये मैं कुछ देना चाहता हूँ। कृपया तीन रात्रियों के बदले में तीन वरदान मांग लीजिए। नचिकेता ने आचार्य यम की प्रार्थना स्वीकार की और उसने प्रथम वर मांगते हुए कहा –

शान्तसङ्कल्पः सुमना यथा स्याद् वीतमन्युर्गौतमो माभि मृत्यो।
त्वत्प्रसृष्टं माभिवदेत्प्रतीत एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे ।।7।।

अन्वय और अर्थ :– **मृत्यो** = हे मृत्युदेव, **यथा** = जिस प्रकार, **गौतमः** = (मेरे पिता) गौतम, **मा अभि** = मेरे प्रति, **शान्तसङ्कल्पः** = शान्तसंकल्प वाले, **सुमनाः** = प्रसन्न मन वाले, **वीतमन्युः** = क्रोधरहित, **स्यात्** = हो जायें, **त्वत्प्रसृष्टम्** = आपके द्वारा भेजे गये, **मा** = मुझे, **प्रतीत** = पहचान कर, **अभिवदेत्** = मुझसे बातचीत करें, **एतत्** = यह, **त्रयाणाम्** = अपने तीन वरों में से, **प्रथमम्** = पहला, **वरम्** = वरदान, **वृणे** = मांगता हूँ।

व्याख्या :– पिता ने क्रोध के आवेग में मुझे आपके पास भेजा। वे अशान्त और दुःखी हो रहे होंगे। मैं तीन वरों में पहला वर यही मांगता हूँ कि मेरे पिता गौतमवंशीय उद्दालक पूरी तरह से मेरे प्रति क्रोधरहित हो जायें और जब मैं आपके पास से घर वापस जाऊं तो मुझे मेरे इसी रूप में पहचानें और फिर बातचीत भी करें। यहाँ नचिकेता ने बड़ी समझदारी से पिता की मानसिक शान्ति और सुख की कामना की है, साथ ही उसने अपनी इसी रूप में पुनः पृथ्वी पर वापस जाने और पिता के साथ फिर से रहने की इच्छा भी व्यक्त की है। उपनिषद् संसार छोड़ने की बात नहीं करता है। इसमें मनुष्य-जीवन को पूरी तरह जीने के उपदेश का अभिप्राय भी छिपा हुआ है। यमराज ने बड़ी प्रसन्नता के साथ नचिकेता को प्रथम वर प्रदान करते हुए कहा –

यथा पुरस्तात् भविता प्रतीत औद्दालकिरारुणिर्मत्प्रसृष्टः।
सुखं रात्रीः शयिता वीतमन्युस्त्वां ददृशिवान्मृत्युमुखात्प्रमुक्तम् ।।8।।

अन्वय और अर्थ :– **त्वाम्** = तुमको, **मृत्युमुखात्** = मृत्यु के मुख से, **प्रमुक्तम्** = छूटा हुआ, **ददृशिवान्** = देखकर, **मत्प्रसृष्टः** = मुझसे प्रेरित, **आरुणिः** = (तुम्हारे पिता) आरुणि, **औद्दालकिः** = उद्दालक की सन्तान, **यथा पुरस्तात्** = पहले की तरह, **प्रतीतः** = (तुम पर पुत्र रूप में) विश्वास करके, **वीतमन्युः** = क्रोध से रहित, **भविता** = हो जायेंगे, **रात्रीः** = और (आगे की) रात्रियों में, **सुखम्** = सुखपूर्वक, **शयिता** = शयन करेंगे।

व्याख्या :– मेरे द्वारा भेजे जाने पर जब तुम पिता के समीप पहुँचोगे तो वे तुम्हें तुरन्त पहचान लेंगे और वे अति प्रसन्न होकर मन में शान्ति का अनुभव करेंगे। अनन्तर वे आयु भर सुख की नींद सो सकेंगे। इस प्रकार से नचिकेता ने पिता की प्रसन्नता की चिन्ता करते हुए प्रथम वर की कामना की।

6.6 कठोपनिषद् - पाठ्य अंश - द्वितीय वर

स्वर्गे लोके न भयं किञ्चनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति।
उभे तीर्त्वाऽशनायापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ।।9।।

अन्वय और अर्थ :– **स्वर्गे लोके** = स्वर्ग लोक में, **किञ्चन् भयम्** = किञ्चिन्मात्र भी भय, **न अस्ति** = नहीं है। **तत्र त्वम् न** = वहाँ तुम नहीं हो। **जरया** = (वहाँ कोई) बुढ़ापे से भी, **न बिभेति** = नहीं डरता है। **स्वर्गलोके** = स्वर्ग लोक में, **अशनायापिपासे** = (लोग) भूख और प्यास, **उभे** = दोनों, **तीर्त्वा** = पार करके, **शोकातिगः** = दुःखों से दूर होकर, **मोदते** = आनन्द भोगते हैं।

व्याख्या :– प्रथम वर प्राप्त करने के बाद नचिकेता ने परलोक से सम्बन्धित द्वितीय वर की याचना की। उसने सर्वप्रथम स्वर्ग की महिमा का बखान किया और कहा, ''मैं जानता हूं कि

स्वर्गलोक बड़ा सुखकर है। वहाँ किसी प्रकार का भय नहीं है। वहाँ वृद्धावस्था भी नहीं आती है और वहाँ कोई तुम्हारे द्वारा मारा भी नहीं जाता है। वहाँ तो भूख और प्यास भी किसी को नहीं सताती है। वहाँ तो केवल आनन्द ही आनन्द है।''

स त्वमग्निं स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो प्रब्रूहि त्वं श्रद्दधानाय मह्यम्।
स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त - एतद् द्वितीयेन वृणे वरेण ।।10।।

अन्वय और अर्थ :– मृत्योः = हे मृत्युदेव, **स त्वम्** = वे आप, **स्वर्ग्यम् अग्निम्** = स्वर्ग की प्राप्ति की साधनभूत अग्नि को, **अध्येषि** = जानते हो (अतः), **त्वम्** = आप, **मह्यम्** = मुझ, **श्रद्धधानाय** = श्रद्धालु को (वह अग्निविद्या), **प्रब्रूहि** = भलीभाँति समझाइए। **स्वर्गलोकाः** = स्वर्ग में रहने वाले लोग, **अमृतत्त्वम्** = अमरता को, **भजन्ते** = प्राप्त करते हैं (इसलिए), **एतत्** = यह, **द्वितीयेन** = दूसरे, **वरेण** = वर के रूप में, **वृणे** = मैं मांगता हूँ।

व्याख्या :– उसने आगे कहा हे देव! आप उस स्वर्ग को प्राप्त कराने वाली अग्निविद्या को जानते हैं। मेरी उस विद्या में बड़ी श्रद्धा है, क्योंकि स्वर्गलोक पाकर लोग अमर हो जाते हैं। अतः आप स्वर्ग को प्राप्त कराने वाली विद्या का उपदेश दीजिए। यह मैं आपसे दूसरा वर मांगता हूँ। नचिकेता की बात सुनकर यमराज ने कहा –

प्र ते ब्रवीमि तद् उ मे निबोध स्वर्ग्यमग्निं नचिकतेः प्रजानन्।
अनन्तलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां विद्धि त्वमेतं निहितं गुहायाम् ।।11।।

अन्वय और अर्थ :– नचिकेतः = हे नचिकेता, **स्वर्ग्यम्** = स्वर्ग साधक, **अग्निम्** = अग्नि को, **प्रजानन्** = अच्छी तरह जानने वाला मैं, **ते** = तुम्हारे लिए, **प्रब्रवीमि** = भली-भाँति बतलाता हूँ, **तत्** = उसे, **उ** = निश्चय ही, **मे** = मुझसे, **निबोध** = जान लो, **त्वम्** = तुम, **एतम्** = इस (अग्नि) को, **अनन्तलोकाप्तिम्** = अविनाशी लोकों की प्राप्ति कराने वाली, **प्रतिष्ठाम्** = आधाररूपा, **अथो** = और, **गुहायाम्** = बुद्धि की गुफा में, **निहितम्** = छिपी हुई, **विद्धि** = समझो।

व्याख्या :– हे नचिकेता! मैं अग्निविद्या को अच्छी तरह जानता हूँ, जिससे स्वर्ग मिलता है। मैं तुम्हें उसका उपदेश दूँगा। यह विद्या स्वर्ग जैसे विनाशरहित लोकों की प्राप्ति कराने वाली है और अत्यन्त गुप्त है। अनन्तर आचार्य यम ने नचिकेता को विस्तार से वह विद्या सिखाई। उसने विद्या को अच्छी तरह समझा। इससे यमराज बहुत प्रसन्न हुए।

तमब्रवीत् प्रीयमाणो महात्मा वरं तवेहाद्य ददामि भूयः।
तवैव नाम्ना भवितायमग्निः सृङ्कां चेमामनेकरूपां गृहाण ।।12।।

अन्वय और अर्थ :– प्रीयमाणः = (उसकी बुद्धि से) प्रसन्न होकर, **महात्मा** = महात्मा यमराज, **तम्** = उससे, **अब्रवीत्** = बोले, **अद्य** = अब मैं, **तव** = तुमको, **इह** = यहाँ, **भूयः** = फिर से, **वरम्** = वरदान, **ददामि** = देता हूँ। **अयम्** = यह, **अग्निः** = अग्निविद्या, **तव** = तुम्हारे, **एव** = ही, **नाम्ना** = नाम से, **भविता** = प्रसिद्ध होगी, **च इमाम्** = और इस, **अनेकरूपाम्** = अनेक रूपों वाली, **सृङ्कां** = माला को (भी), **गृहाण** = ग्रहण करो।

व्याख्या :– यमराज नचिकेता की तीव्र बुद्धि से अत्यन्त प्रसन्न हुए और उसे अपनी तरफ से एक और वरदान देते हुए उन्होंने कहा, 'आज से यह अग्नि तुम्हारे ही नाम से जानी जाएगी'। यम आचार्य ने मानो इस प्रकार नचिकेता को विविध ज्ञान की माला भी दी। अपनी बात को दोहराते हुए उन्होंने आगे कहा–

एष तेऽग्निर्नचिकेतः स्वर्ग्यो यमवृणीथा द्वितीयेन वरेण।
एतमग्निं तवैव प्रवक्ष्यन्ति जनास-स्तृतीयं वरं नचिकेतो वृणीष्व ।।13।।

अन्वय और अर्थ :– **नचिकेतः** = हे नचिकेता, **एषः** = यह, **ते** = तुम्हें बतलाई गयी, **स्वर्ग्यः** = स्वर्ग प्रदान करने वाली, **अग्निः** = अग्नि विद्या है, **यम्** = जिसको (तुमने), **द्वितीयेन** = दूसरे, **वरेण** = वर से, **अवृणीथाः** = चुना है। **एतम्** = इस, **अग्निम्** = अग्नि को (अब से), **जनासः** = लोग, **तव** = तुम्हारे, **एव** = ही नाम से, **प्रवक्ष्यन्ति** = कहा करेंगे। **नचिकेतः** = हे नचिकेता (अब तुम), **तृतीयम्** = तीसरा, **वरम्** = वरदान, **वृणीष्व** = मांग लो।

व्याख्या :–'हे नचिकेता! मैंने तुम्हें यह अग्निविद्या बतलाई जिससे स्वर्ग मिलता है, साथ ही यह भी घोषणा की कि आज से यह अग्नि तुम्हारे ही नाम से जानी जाएगी और लोग इसे 'नाचिकेत अग्नि' कहेंगे। अब तुम तीसरा वर मांग लो।

6.7 कठोपनिषद् - पाठ्य अंश - तृतीय वर

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये - ऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीयः ।।14।।

अन्वय और अर्थ :– **प्रेते** = मरे हुए, **मनुष्ये** = मनुष्य के विषय में, **या** = जो, **इयम्** = यह, **विचिकित्सा** = संशय है, **एके (आहुः)** = कोई कहता है, **अयम् अस्ति इति** = यह (आत्मा) रहता है, **च एके (आहुः)** = और कोई कहता है, **न अस्ति इति** = कि यह (आत्मा) नहीं रहता है। **त्वया** = आपके द्वारा, **अनुशिष्ट** = उपदेश पाया, **अहम्** = मैं, **एतत्** = यह, **विद्याम्** = भली-भाँति जानूँ, **एषः** = यह, **वराणाम्** = वरों में, **तृतीयः** = तीसरा, **वरः** = वर है।

व्याख्या :– तीसरे वर के अन्तर्गत नचिकेता ने आत्मज्ञान-सम्बन्धी जिज्ञासा की। उसने यमराज को आचार्य मानते हुए उनके आगे एक प्रश्न रखा जो उसके ज्ञान को भी प्रदर्शित करता है। उसने दुनिया में सुना और देखा हुआ था कि कुछ लोग आत्मा के अस्तित्त्व में विश्वास रखते हैं और कुछ लोग नहीं। इसलिए उसने यही पूछा। वह स्वयं आत्मा के अस्तित्त्व में विश्वास रखता है, यह पिता को कही गयी उसकी बातों से पहले ही प्रकट हो चुका है। अतः आत्मा और उससे जुड़ी सभी बातों को अच्छी तरह समझना चाहता है। उसके प्रश्न का मुख्य तात्पर्य यही है। उसको यह ज्ञात है कि आत्मज्ञान ही केवल मोक्ष-प्राप्ति का मार्ग है और मनुष्य जीवन का चरम पुरुषार्थ भी। सांसारिक और पारलौकिक वरदानों के बाद वह आत्मज्ञान को तीसरे वरदान के रूप में आचार्य यम से प्राप्त करना चाहता है।

देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा न हि सुविज्ञेयमणुरेष धर्मः।
अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व, मा मोपरोत्सीरति मा सृजैनम् ।।15।।

अन्वय और अर्थ :– **नचिकेतः** = हे नचिकेता, **अत्र** = इस विषय में, **पुरा** = पहले, **देवैः** = देवों द्वारा, **अपि** = भी, **विचिकित्सितम्** = सन्देह किया जाता था, **हि** = क्योंकि, **एषः** = यह, **धर्मः** = विषय, **अणुः** = अति सूक्ष्म है, **न सुविज्ञेयम्** = (और) सरलता से समझ में आने वाला नहीं है। **अन्यम्** = दूसरा, **वरम्** = वर, **वृणीष्व** = माँग लो, **मा** = मुझपर, **मा उपरोत्सीः** = इसका दबाव मत डालो, **एनम्** = इस (वर) को, **मा (माम्)** = मेरे प्रति, **अतिसृज** = छोड़ दो।

व्याख्या :– प्रश्न का उत्तर न देकर यमाचार्य ने नचिकेता को समझाते हुए कहा कि प्राचीन काल में अनेक ज्ञानियों ने इस विषय में जानने का प्रयास किया, परन्तु वे तो क्या देवता भी इसको नहीं जान सके। वे इस विषय में सदा सन्देह किया करते हैं। यह एक अतिगहन

विषय है और सरलता से समझ में नहीं आता है। अतः मेरा तुमसे अनुरोध है कि इस वरदान को देने से मुझे मुक्त कर दो और कुछ अन्य ही माँग लो। उनकी बात सुनकर जरा भी विचलित न होते हुए नचिकेता ने पुनः उसी वर की याचना करते हुए कहा–

देवैरत्रापि विचिकित्सितं किल त्वं च मृत्यो यत्र सुविज्ञेयमात्थ।
वक्ता चास्य त्वादृगन्यो न लभ्यो नान्यो वरस्तुल्य एतस्य कश्चित् ।।16।।

अन्वय और अर्थ :– **मृत्यो** = हे मृत्युदेव, **त्वम् यत् आत्थ** = आपने जो यह कहा कि, **अत्र** = इस विषय में, **किल** = सचमुच, **देवैः अपि** = देवताओं द्वारा भी, **विचिकित्सितम्** = सन्देह किया गया है, **च न सुविज्ञेयम्** = और यह सहज ही समझ में आने वाला नहीं है, **च अस्य** = और इसका, **वक्ता** = कहने वाला, **त्वादृक्** = तुम्हारे जैसा, **अन्यः न** = दूसरा नहीं, **लक्ष्यः** = मिल सकता है (अतः) = इसलिए, **एतस्य तुल्यः** = (मेरी समझ में) इसके समान, **अन्यःकश्चित्** = दूसरा कोई, **वरः न** = वर नहीं है।

व्याख्या :– आपने स्वयं कहा कि देवता भी इस विषय में किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सके और वह अतिगहन और सूक्ष्म है। आपकी बातों से स्पष्ट है कि यह एक महत्त्वपूर्ण विषय है और इसके बारे में बताने वाला व्यक्ति मिलना सरल नहीं है। आप जैसा इसका ज्ञाता और कहाँ मिलेगा। इसलिए मैं किसी दूसरे वर की याचना क्यों करूं? कृपा कर मुझे उक्त विषय का ही उपदेश दें। यही आपसे मेरी प्रार्थना है। यमराज ने नचिकेता की दृढ़ता की परीक्षा लेने के लिए उसके सामने कई सांसारिक प्रलोभनों को उपस्थित करते हुए कहा –

शतायुषः पुत्रपौत्रान् वृणीष्व बहून् पशून् हस्तिहिरण्यमश्वान्।
भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि ।।17।।

अन्वय और अर्थ :– **शतायुषः** = सैकड़ों वर्षों की आयु वाले, **पुत्रपौत्रान्** = बेटे और पोतों को, **बहून्** = बहुत से, **पशून्** = पशुओं को, **हस्तिहिरण्यम्** = हाथी और सुवर्ण को, **अश्वान्** = घोड़ों को, **वृणीष्व** = माँग लो, **भूमेः** = भूमि के, **महत्** = बड़े, **आयतनम्** = विस्तार (वाले साम्राज्य) को, **वृणीष्व** = मांग लो, **स्वयं च** = और स्वयं भी, **यावत्** = जितने, **शरदः** = वर्षों तक, **इच्छसि** = चाहो, **जीव** = जिओ।

व्याख्या :– 'हे नचिकेता! संसार में अनेक पदार्थ हैं जिनकी तुम इच्छा कर सकते हो। पुत्र और पौत्रों से भरा परिवार, गाय, अश्व, हस्ति आदि पशु, सुवर्ण आदि धन, एक बड़ा राज्य और भी जो चाहो मांग सकते हो। इन सब पदार्थों का उपभोग करने के लिए एक लम्बी आयु मांग लो'। असीम धन-सम्पत्ति और सुख-वैभव के ऐसे ही अनेक प्रलोभन देते हुए यमराज ने कई प्रकार से नचिकेता को इस वरदान को मांगने से रोकना चाहा। वास्तव में वे उसकी परीक्षा ले रहे थे, क्योंकि आत्मा का ज्ञान वैराग्यवान् और सच्ची जिज्ञासा से सम्पन्न व्यक्ति को ही दिया जाता है। नचिकेता ने यमराज के एक के बाद एक सभी प्रलोभन ठुकरा दिये और आत्मज्ञान के अपने प्रश्न पर अडिग रहते हुए उसने पुनः कहा –

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत् त्वा।
जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं वरस्तु मे वरणीयः स एव ।।18।।

अन्वय और अर्थ :– **मनुष्यः** = मनुष्य, **वित्तेन** = धन से, **तर्पणीयः** = कभी भी तृप्त, **न** = नहीं किया जा सकता है, **चेत्** = जब कि (हमने), **त्वा** = आपको, **अद्राक्ष्म** = देख लिया है तो, **वित्तम्** = धन को, **लप्स्यामहे** = पा ही लेंगे (और), **त्वम्** = आप, **यावत्** = जब तक, **ईशिष्यसि** = शासन करते रहेंगे तब तक, **जीविष्यामः** = हम जी भी लेंगे, (अतः) = इसलिए, **मे** = मेरा, **वरणीयः** = माँगने लायक, **वरः** = वरदान, **तु** = तो, **सः** = वह, **एव** = ही है।

व्याख्या :– 'आपके द्वारा दिए जा रहे सारे भोग और धन केवल इच्छाओं को और अधिक बढ़ाते ही हैं। मनुष्य कभी भी इनसे तृप्त नहीं हो सकता। एक सुखी जीवन के लिए इनकी महत्ता मुझे ज्ञात है और मेरा मानना है कि यह सब तो आपके दर्शन के प्रभाव से मिल ही जायेगा। रही बात दीर्घ आयु की, तो वह भी आवश्यक है किन्तु उसे मांग कर मैं अपना वरणीय वर खोना नहीं चाहता। जब आपकी कृपा मिल गयी है तो इच्छानुसार मैं जी भी लूँगा। तीसरे वर के अन्तर्गत तो मुझे केवल आपसे आत्मज्ञान का उपदेश ही चाहिए। नचिकेता की दृढ़ता से सन्तुष्ट होकर यमाचार्य ने उसे ज्ञान प्रदान किया जो कठोपनिषद् का मुख्य विषय है।

बोध प्रश्न 4

(i) **नीचे लिखे कथनों में से कुछ सही हैं कुछ गलत। आप उत्तर चुनकर उसे 'ठीक' चिह्न द्वारा दिखाइए।**

क) यज्ञ के बाद पुरोहितों को दक्षिणा दी जाती है।

सही ☐ गलत ☐

ख) नचिकेता ने पिता की सम्पत्ति को ध्यान में रखकर उनको गायों का दान देने से रोका।

सही ☐ गलत ☐

ग) अदेय वस्तु का दान अनुचित है।

सही ☐ गलत ☐

घ) अतिथि का सत्कार करना गृहस्थ का कर्तव्य है।

सही ☐ गलत ☐

ङ) तीन रात्रियों तक नचिकेता के घर में सुखपूर्वक रहने के बाद यमराज ने उसे तीन वरदान दिए।

सही ☐ गलत ☐

(ii) **निम्नलिखित वाक्यों के भाव को अपने शब्दों में लिखिए।**

क) शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके।

ख) सृङ्कां चेमामनेकरूपां गृहाण।

ग) अस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।

घ) न वित्तने तर्पणीयो मनुष्यः।

ङ) वरस्तु मे वरणीयः स एव।

(iii) **निम्नलिखित वाक्यों के रिक्त स्थान पर सही शब्द लिखकर वाक्य को पूरा कीजिए।**

क) पिता की .... पुत्र का धर्म है।

ख) घर आये अतिथि का स्वागत सर्वप्रथम ....देकर करना चाहिए।

ग) स्वर्गलोक न मृत्यु है और न .... ।

घ) स्वर्ग में रहने वाले........................होते हैं।

ङ) आत्मज्ञान एक .... विषय है।

च) आत्मज्ञान के बारे में बताने वाला व्यक्ति मिलना ....नहीं है।

छ) आत्मज्ञान वैराग्यवान् और सच्ची .... से सम्पन्न व्यक्ति को दिया जाता है।

6.8 सारांश

इस प्रकार आपने इस इकाई में संस्कृति विषयक पाठ को पढ़ा। यह इकाई तीन भागों में विभक्त हैं। पहले हिस्से में भारतीय संस्कृति के स्वरूप और विशेषताओं को संक्षेप में समझाया गया। फिर संस्कृत-साहित्य के दो प्रसिद्ध ग्रन्थों के अंशों को पढ़ाया गया। पाठ्य भाग में भर्तृहरि के नीतिशतक के चार श्लोकों से जहाँ भारतीय जीवन के मूल्यों की जानकारी कराई गयी, वहीं कठोपनिषद् से संकलित अठारह मन्त्रों द्वारा भारतीय संस्कृति में मनुष्य-जीवन के लिए निर्धारित पुरुषार्थों को समझाया गया।

6.9 शब्दावली

आपको इकाई सरलता से समझ आ सके इसलिए इस इकाई में प्रयुक्त हुए कुछ कठिन शब्दों के अर्थ या उनका तात्पर्य यहाँ दिया जा रहा है।

परिष्कृत	=	शुद्ध किया गया।
मान्यता	=	माने गए विचार।
आधारशिला	=	बुनियाद, प्रतिष्ठा।
सर्वजनहित	=	सब लोगों का कल्याण।
विश्वबन्धुत्व	=	सबमें भाईचारे की भावना।
सौहार्द	=	आपसी मेलमिलाप और मित्रभाव।
यम-नियम	=	मनुष्यों को अनुशासित रखने वाले सिद्धान्त।
संकल्प	=	मन में किसी विचार का आना।
पुरुषार्थ	=	पुरुष का अर्थ अर्थात् मनुष्य का लक्ष्य।
चतुष्टय	=	चार का समूह।
मुक्तक श्लोक	=	कोई पूरी बात कहने के कारण जो श्लोक अपने आप में मुक्त अर्थात् स्वतन्त्र होता हो।
अन्वय	=	पद्य के पदों को अर्थ के अनुसार क्रम में प्रस्तुत करना।
नीति	=	जीवन को उत्कर्ष की ओर ले जाने वाली बातें।
अध्यात्म	=	आत्मा से सम्बन्धित।
उपनिषद्	=	वे वैदिक ग्रन्थ, जिनमें मुख्यरूप से ब्रह्मज्ञान की चर्चा है।
भाष्य	=	किसी प्राचीन ग्रन्थ पर लिखी गई व्याख्या।
आख्यान	=	कथा।
मन्त्र	=	वेद के छन्दोबद्ध पद्य या वाक्य।

जिज्ञासा	=	जानने की इच्छा।
निर्भीक	=	बिना डरे।
सूक्ष्म	=	बारीक, कठिनता से समझ में या दिखने में आने वाला।
वैराग्यवान्	=	वह व्यक्ति जिसे किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति राग अर्थात् आसक्ति नहीं होती है।

6.10 अभ्यास प्रश्न

(i) नीचे लिखे वाक्यों को पूरा कीजिए –

क) संस्कृति शब्द का अर्थ .... है।

ख) संस्कृति .... से भिन्न है।

ग) भारतीय संस्कृति एक .... संस्कृति है।

घ) .... भारतीय संस्कृति की एक विशेषता है।

ङ) जीवन के लक्ष्यों को यहाँ .... नाम दिया गया है।

च) पुरुषार्थ चार हैं ...., ..., ..., ...।

छ) मोक्ष का अर्थ है – ....।

ज) गतिशीलता के गुण के कारण भारतीय संस्कृति का .... वैसा ही बना रहा।

(ii) भारतीय संस्कृति की किन्हीं दो विशेषताओं पर प्रकाश डालें।

(iii) नीतिशतक के लेखक का क्या नाम है?

(iv) मनुष्य का निरन्तर रहने वाला आभूषण कौन सा है?

(v) धन की कौन सी तीन अवस्थायें हैं?

(vi) नचिकेता की कथा किस ग्रन्थ में आती है?

(vii) नचिकेता के तीन वरों को क्रम से बतायें।

(viii) कठोपनिषद् की कथा से क्या शिक्षा मिलती है?

(ix) कठोपनिषद् की कथा को संक्षेप में लिखें।

(x) निम्नलिखिति शब्दों के अर्थ लिखें –

क. मर्त्यलोक, ख. भूषयन्ति, ग. नीतिनिपुणाः, घ. सर्ववेदस्, ङ पीतोदकाः, च. ददामि, छ. दास्यसि, ज. नमस्यः, झ. वृणीष्व, ञ. सुमनाः, ट. शोकातिगः, ठ. स्वर्ग्यम्, ड. अमृतत्वम्, ढ़. निबोध, ण. प्रीयमाणः, त. जनासः, थ. विचिकित्सा, द. सृज, ध. सुविज्ञेयम्, न. हिरण्यम्, प. जीविष्यामः, फ. ईशिष्यसि, ब. वरणीयः।

6.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. वैदिक संस्कृति के मूल तत्त्व – मंगलदेव शास्त्री, वाराणसी।
2. नीतिशतकम् – गोस्वामी प्रह्लाद गिरि, भारतीय विद्या प्रकाशन।
3. कठोपनिषद् – आचार्य सुरेन्द्र शास्त्री, चौखम्बा विद्याभवन।

बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

(i) क) सही ख) गलत ग) सही घ) गलत ङ) सही

(ii) क) घ ख) ग ग) क घ) ख

(iii) 1) क 2) क 3) ग

बोध प्रश्न 2

(i) क) उपदेश ख) भर्तृहरि ग) राजा घ) पशु ङ) वाणी
च) धीर पुरुष छ) गतियाँ ज) शील झ) धनसम्पत्ति
ञ) परिश्रम

(ii) विद्या, तपस्या, दान, ज्ञान, शील, गुण और धर्म

(iii) क) ग ख) ङ ग) ख घ) क ङ) घ

(iv) क. सारे आभूषण निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं, परन्तु वाणी का आभूषण निरन्तर रहने वाला आभूषण है।

ख. जो मनुष्य न दान करता है और न भोग करता है उसके धन की तीसरी गति (नाश) होती है।

ग. धीर पुरुष न्याय के मार्ग से एक कदम भी विचलित नहीं होते।

बोध प्रश्न 3

(i) ब्रह्मज्ञान (ii) सर्वाधिक (iii) ग्यारह (iv) यमराज (v) पुत्र
(vi) क्रोधित (vii) यमराज (viii) सत्कार (ix) प्रसन्नता (x) याद करके
(xi) नचिकेता (xii) प्रलोभन, जिज्ञासा (xiii) अपनाना (xiv) महत्ता (xv) निर्भीक

बोध प्रश्न 4

(i) क) सही ख) गलत ग) सही घ) सही ङ) गलत

(ii) क) व्यक्ति स्वर्गलोक में पहुँचकर शोक से दूर रहता है।

ख) तुम इस माला को ग्रहण करो जो अनके रूपों वाली है।

ग) कुछ कहते हैं कि वह (आत्मा) है और कुछ कहते हैं कि वह (आत्मा) नहीं है। मरने के बाद इस प्रकार का संशय लोगों में किया जाता है।

घ) मनुष्य धन से कभी सन्तुष्ट और तृप्त नहीं किया जा सकता है क्योंकि उसके पास जितना भी धन हो उससे अधिक पाने की लालसा बनी रहती है।

ङ) यमराज के द्वारा कहे गये प्रलोभनों में न फँसकर आत्मज्ञान को पाने के अपने वरदान पर अडिग रहते हुए नचिकेता ने अन्त में कहा कि 'उसे वर तो वही चाहिए'।

(iii) क) प्रसन्नता ख) जल, आसन आदि ग) वृद्धावस्था
घ) अमर ङ) सूक्ष्म च) सरल छ) जिज्ञासा

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

अभ्यास प्रश्न

(i) क. परिष्कृत कार्य, ख. सभ्यता, ग. प्राचीन और महान् घ. अध्यात्म की भावना, ङ पुरुषार्थ, च. धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष, छ. संसार के बन्धन से मुक्ति पाना, ज. मूल रूप।

(ii) अनेकता में एकता देखना और समन्वय की प्रवृति

(iii) भर्तृहरि

(iv) संस्कृता वाणी

(v) दान, भोग और नाश

(vi) कठोपनिषद्

(vii) सांसारिक, पारलौकिक और आत्मज्ञान-विषयक

(viii) माता-पिता की प्रसन्नता का ध्यान। अतिथिसत्कार की महत्ता। सांसारिक भोगों, धन और दीर्घ आयु की उपादेयता। अपनी बुद्धि का समुचित प्रयोग। आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिये भोगों के प्रति वैराग्य और ज्ञान की इच्छा की आवश्यकता। चरम लक्ष्य के रूप में मोक्ष की कामना। अपने गुरु के प्रति सम्मान की भावना।

(ix) पाठ के 6.4 भाग का तीसरा और चौथा अनुच्छेद देखें।

(x) क. मनुष्यलोक, ख. अलंकृत करते हैं, ग. नीति में कुशल लोग, घ. समस्त धन, ङ जो जल पी चुकी हैं, च. मैं देता हूँ, छ. तुम दोगे, ज. नमस्कार करने योग्य, झ. तुम मांग लो, ञ. प्रसन्न मन, ट. दुःखों से परे, ठ. जो स्वर्ग को प्राप्त कराए, ड. अमरता, ढ. जान लो, ण. प्रसन्न हुआ, त. लोग, थ. संशय, द. छोड़ दो, ध. अच्छी तरह समझ में आने वाला, न. सुवर्ण, प. हम जियेंगे, फ. तुम शासन करोगे, ब. वरण करने योग्य।

इकाई 7 सामाजिक विज्ञान आधारित पाठ

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 मूल पाठ-परिचय (यक्ष-युधिष्ठिर-संवाद)

7.3 लेखक-परिचय

7.4 महाभारत का काल

7.5 यक्ष-युधिष्ठिर के प्रश्नोत्तर

7.6 यक्ष-युधिष्ठिर-संवाद (कुछ श्लोक)

7.7 सारांश

7.8 शब्दावली

7.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.0 उद्देश्य

इस इकाई में आपको 'सामाजिक-विज्ञान' के विविध पक्षों से परिचित कराया जा रहा है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- भारतीय-संस्कृति को समग्रता से परिभाषित कर सकेंगे।
- पुरुषार्थ-चतुष्टय का ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- 'यक्ष-युधिष्ठिर-संवाद' का महत्त्व समझ सकेंगे।
- वन के महत्त्व की व्याख्या कर सकेंगे।
- पाण्डवों के चरित्र को व्याख्यायित कर सकेंगे।
- यक्ष का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने 'संस्कृति विषयक पाठ' का परिचय प्राप्त किया। इस इकाई में हम 'सामाजिक विज्ञान आधारित पाठ' के बारे में चर्चा करेंगे। महाभारत महर्षि वेदव्यास की रचना है। प्रसिद्ध है कि इन्होंने तीन वर्ष के निरन्तर परिश्रम से महाभारत की रचना की। कहा जाता है कि मूल ग्रन्थ का नाम 'जय इतिहास' था। उसमें केवल आठ हजार आठ सौ श्लोक थे। पीछे वही चौबीस हजार श्लोकों में 'भारत' नाम से प्रसिद्ध हुआ, जिसका नाम 'चतुर्विंशतिसाहस्त्रीसंहिता' भी है। आगे चल कर 'भारत' संहिता में अनेक उपाख्यानों का समावेश हुआ, और वह 'शतसाहस्त्रीसंहिता' या महाभारत के नाम से प्रसिद्ध हुई। अमित तेजस्वी व्यास का जितना कुछ अभिमत था, वह इन एक लाख श्लोकों में भर गया है। यह पवित्र अर्थशास्त्र है। यह परम धर्मशास्त्र है। यह उच्चतम मोक्षशास्त्र है यह वीरों को जन्म देनेवाला है। यह महान् कल्याणकारी है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थों का निचोड़ इस महाकाव्य में आ गया है। भाव-शुद्धि इस ग्रन्थ की प्राण-शक्ति है।

इस ग्रन्थ में महर्षि व्यास ने वेद और लोक की सामग्री का अपूर्व समन्वय प्रस्तुत किया है। महाभारतकार की दृष्टि में मनुष्य ही ज्ञान और विज्ञान का मध्यबिन्दु है – 'मै तुमसे यह रहस्य बतलाता हूँ कि इस लोक में मनुष्य से बढ़कर श्रेष्ठ और कुछ नहीं है – 'न मानुषाच्छ्रेष्ठतरं हि किंचित्' (शान्तिपर्व – 180 / 2) ; यह लोक कर्मभूमि है' (वन॰ 261 / 35); 'मुनष्य का लक्षण कर्म है' (आश्व॰ 43 / 20) ; 'जैसा कर्म वैसा लाभ, यही शास्त्रों का निचोड़ है' (शान्तिपर्व 279 / 20) ; 'जो स्वयं अपनी आँख से लोक का दर्शन करता है, उसी को मैं सर्वदर्शी मानता हूँ' (उद्योग पर्व 43 / 36) ; 'वेद का रहस्य सत्य है, सत्य का रहस्य आत्म-संयम है, आत्म-संयम से ही मोक्ष होता है, यही सब उपदेशों का सार है' (शान्ति पर्व 299 / 13)।

इस प्रकार अनेक रत्नों की कान्ति से यह महान् ग्रन्थ आलोकित है। भारतीय राजनीति, आध्यात्म-शास्त्र, समाज-विज्ञान, मानव-विज्ञान, धर्म-दर्शन इन सबका सुनहला ताना-बाना इस अनुपम ग्रन्थ में बुना हुआ है। जो महाभारत में है, वही अन्यत्र मिलेगा। जो यहाँ नहीं है, वह अन्यत्र भी नहीं है :

'यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्

(आदि पर्व 56 / 33)

महाभारत के वर्तमान रूप में 18 पर्व हैं। सब पर्वों में कुल मिलाकर 1948 अध्याय हैं और 83,146 श्लोक हैं। यह संख्या पुणे से सम्पादित संशोधित संस्करण के अनुसार है। महाभारत के दक्षिण भारतीय संस्करण में अध्यायों की संख्या 1959 और श्लोकों की संख्या 95,585 है। इनमें इतर छिटपुट श्लोक भी समाविष्ट कर लिये जायें तो यह संख्या एक लाख से भी अधिक बैठती है।

7.2 मूल-पाठ-परिचय (यक्ष-युधिष्ठिर-संवाद)

यह संवाद महाभारत के वन-पर्व में उपलब्ध है। प्रसंग द्वैतवन का है। इस वन में एक ब्राह्मण घबराया हुआ पहुँचा और युधिष्ठिर से बोला ''राजन् ! मेरा तो बुरा हाल हुआ, अरणियों सहित मैंने अपना बर्तन एक पेड़ पर टाँग रखा था। एक हिरण आया और उसे लेकर भाग गया। हाय! अब मैं अग्नि कैसे जलाऊँगा। तुम और तुम्हारे चारों भाई जाकर उसे खोजो और मेरा अरणि-पात्र मुझे वापिस देकर मेरे अग्नि-होत्र कर्म की रक्षा करो।''

पाण्डव उस हिरण को ढूंढने निकले, पर उसका कहीं भी पता नहीं चला। थके-माँदे खिन्न पाण्डव एक बरगद की ठण्डी छाया में जा बैठे। युधिष्ठिर ने अपने भाई नकुल से पानी लाने को कहा, क्योंकि सभी पाण्डव बहुत प्यासे थे।

समीप एक सरोवर था। नकुल वहाँ पहुँचा। ज्यों ही उसने वहाँ का पानी पीना चाहा, उन्हें सुनाई पड़ा– खबरदार! इस सरोवर पर पहले से ही मेरा अधिकार है। पहले मेरे प्रश्नों के उत्तर दो, तभी तुम इसका पानी पी सकोगे।

वह यक्ष था। यक्ष की बात पर नकुल ने ध्यान नहीं दिया, क्योंकि वह प्यास से व्याकुल था, किन्तु पानी पीते ही वह गिर पड़ा। इसी प्रकार सहदेव, अर्जुन और भीम एक-एक का यही हाल हुआ।

युधिष्ठिर ने भाइयों को मृत देखकर बहुत विलाप किया। उन्होंने भी ज्यों ही वहाँ का पानी पीना चाहा, वही आवाज सुनाई दी। युधिष्ठिर ठिठक गये। प्यास से बेहाल होने के बावजूद

उन्होंने पानी नहीं पिया और यक्ष के प्रश्नों के पूरे उत्तर दिये। यही यक्ष-युधिष्ठिर-संवाद आगे चलकर 'यक्ष-प्रश्न' के रूप में प्रसिद्ध हुआ और लोक में कठिन प्रश्न के रूप में जाना गया।

7.3 लेखक-परिचय

महर्षि वेदव्यास का पूरा नाम कृष्ण द्वैपायन व्यास है। सांवला रंग होने के कारण इन्हें कृष्ण नाम से सम्बोधित किया जाता था। यमुना की धारा के बीच में जन्म होने के कारण इन्हें 'द्वैपायन' कहा जाता है। वेद की ऋचाओं, गायन-योग्य मन्त्रों और गद्यभाग को क्रमशः ऋग्वेद, सामवेद और युजर्वेद के रूप में पृथक्-पृथक् संकलित करने के कारण मुनि कृष्ण द्वैपायन महर्षि वेदव्यास के रूप में प्रसिद्ध हुए। इन्हीं महर्षि वेदव्यास ने पुराणों का संकलन किया। अठारह प्रमुख पुराणों के अतिरिक्त बहुत से उपपुराण तथा अन्य ग्रन्थ भी उन्हीं की संकलित रचनायें है।

उन्हें महाभारत, अठारह पुराणों तथा वेदान्त-सूत्र का रचयिता माना जाता है। उनका अस्तित्त्व केवल साहित्यिक अनुश्रुतियों से प्रमाणित होता है, जो इतनी प्राचीन हैं कि उनकी अवहेलना नहीं की जा सकती। यह सम्भव है कि महर्षि व्यास की प्रसिद्धि के कारण बाद के बहुत से लेखकों ने अपनी रचनायें उनके नाम से प्रचलित कर दीं।

पुराण बहुत विस्तृत हैं। उनमें कल्पभेद से चरितों में भी भेद आया है। समस्त चरित इस कल्प के अनुरूप हैं और समस्त धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष सम्बन्धी सिद्धान्त एकत्र करने के विचार से उन्होंने महाभारत की रचना की। समस्त सिद्धान्त और व्यवहार को संकलित किये जाने के कारण महाभारत को पंचम वेद के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। वस्तुतः महर्षि वेदव्यास से प्रारम्भ हुई व्यास-परम्परा आज भी भारत में विद्यमान है और व्यास-पीठ पर आसीन अनेक कथाकार आज भी भारत की समस्त जनता को कथा के माध्यम से धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष के स्वरूप की व्याख्या करते हैं।

7.4 महाभारत का काल

महाभारत की रचना के बारे में यह अनुमान लगाया जाता है कि महर्षि व्यास ने अपने अथक परिश्रम से उसे तीन वर्षों में लिखा है, फिर भी महाभारत का रचना-काल अभी तक विवादग्रस्त है। इसके परिशीलन से यह स्पष्ट होता है कि यह अकेले व्यक्ति की रचना नहीं है और यह मात्र तीन वर्षों में नहीं रचा गया है।

अधिकांश विद्वानों की अवधारणा है कि महाभारत का युद्ध 2000 ई.पू. और 1000 ई.पू. के बीच हुआ था। इसी सम्बन्ध में कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया में भी महाभारत का समय 1000 ई.पू. में ही कहा गया है। इस युद्ध के पश्चात् ही चारणों ने इसकी घटनाओं और पात्रों की वीरता के सम्बन्ध में गीतों का निर्माण किया होगा। इस प्रकार महाभारत के लिपिबद्ध होने के सैकड़ों वर्ष पूर्व महाभारत की मूल घटनायें अव्यवस्थित चारण-गीतों के रूप में सम्भवतः विद्यमान रही होंगी। कालान्तर में इन्हीं चारण-गीतों को आधार मानकर महर्षि व्यास ने महाभारत को लेखबद्ध किया होगा।

महाभारत कब लेखबद्ध किया गया, इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। महाभारत का सर्वप्रथम उल्लेख आश्वलायन गृह्यसूत्र (महाभारत के उपदेशक वैशम्पायन जैमिनि आदि) का करता है, परन्तु इन गृह्य-सूत्रों का रचना-काल निर्धारित करना भी कठिन है। इतना तो सुनिश्चित है कि इसका रचना-काल पर्याप्त प्राचीन है। उल्लेखनीय है कि सामान्यतः रामायण का रचना काल 600 ई.पू. माना जाता है।

मैक्डॉनल महोदय का अभिमत है कि महाभारत की रचना सम्भवतः 500 ई. के लगभग हुई थी।

विन्टरनित्ज महाभारत का काल वर्तमान स्वरूप में 400 ई.पू. लगभग मानते हैं।

परन्तु समय-समय पर महाभारत में अनेकानेक प्रक्षेप जुड़ते रहे और इस प्रकार उसका कलेवर बढ़ता रहा।

आरम्भ में महाभारत जय-काव्य कहलाता था तब यह भारत नाम से जाना जाता था, बाद में शत-साहस्त्री कहा गया, इसी क्रम में यह ग्रन्थ परिवर्तित एवं परिवर्धित होता गया। आज इसमें एक लाख श्लोक हैं।

मैक्डॉनल के अनुसार मूल महाभारत में केवल बीस हजार श्लोक थे। अब प्रश्न यह होता है कि महाभारत का वर्तमान स्वरूप कब बनकर तैयार हुआ?

कुछ पाश्चात्य विद्वान् यथा होल्ज़मन का मत है कि महाभारत का वर्तमान रूप पन्द्रहवीं शताब्दी या सोलहवीं शताब्दी तक निश्चित हुआ था। परन्तु उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर यह मत असंगत प्रतीत होता है।

लगभग 700 ई. में कुमारिल ने महाभारत का एक स्मृति के रूप में उल्लेख किया है। बाण ने भी इसे एक उत्तम काव्य के रूप में स्वीकार किया है। पाणिनि ने भी क्रमशः भारत, महाभारत का उल्लेख किया है।

कम्बोडिया में प्राप्त लगभग 600 ई. का एक अभिलेख महाभारत को धार्मिक ग्रन्थ मानता है। इस महाकाव्य में बौद्ध-धर्म-विषयक उल्लेख पाये जाते हैं। छठीं और पाँचवी शताब्दियों के अनेक अभिलेखों में भी महाभारत का उल्लेख मिलता है। विविध साक्ष्यों के आधार पर आर. जी. भाण्डारकर का मानना है कि 500 ई.पू. तक महाभारत प्रसिद्ध ग्रन्थों में प्रतिष्ठित हो चुका था।

वर्तमान रूप में महाभारत में शकों, यवनों, आभीर, यवल, किरात, शबर, पहलप, तुषार आदि विदेशी जातियों का वर्णन मिलता है। उसमें विष्णु, शिव आदि की उपासना का विवरण भी मिलता है। इसमें स्तूपों आदि का वर्णन भी मिलता है। उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर मैक्डॉनल का मत है कि वर्तमान महाभारत के रूप में इसका परिवर्धन 300 ई.पू. और 100 ई.पू. के मध्य में हुआ था। राधाकुमुद मुखर्जी का विचार है कि महाभारत पत´जलि के महाभाष्य ई.पू. दूसरी शताब्दी तक पूर्ण हो चुका था।

उपर्युक्त मन्तव्यों का निष्कर्ष है कि महाभारत का वर्तमान रूप छठीं शताब्दी ई.पू. की रचना मानी जा सकती है।

7.5 यक्ष-युधिष्ठिर के प्रश्नोत्तर

पिपासाकुल युधिष्ठिर से 34 बार प्रश्न किये हैं, इन प्रश्नों का युधिष्ठिर ने 124 बार में उत्तर दिया है। यक्ष ने 27 बार एक-एक श्लोक में चार-चार प्रश्न किये, इस प्रकार एक सौ आठ प्रश्न सत्ताईस बार पूछे गए हैं और एक श्लोक में पाँच प्रश्न तथा चार बार एक-एक प्रश्न एवं एक बार में दो प्रश्न पूछे हैं। यहां प्रश्नोत्तर एक दृष्टि में इसी प्रकार द्रष्टव्य हैं।

प्रश्न	उत्तर
श्लोक 45	**श्लोक 46**
1. सूर्य को उदित कौन करता है?	ब्रह्म
2. सूर्य के चारों ओर कौन चलता है?	देवता
3. सूर्य को अस्त कौन करता है?	धर्म
4. वह किसमें प्रतिष्ठित है?	सत्य में
श्लोक 47	**श्लोक 48**
5. मनुष्य श्रोत्रिय किससे होता है?	वेदाध्ययन से
6. महत्पद किसके द्वारा प्राप्त होता है?	तप से
7. यह किसके द्वारा द्वितीयवान् होता है?	धर्म (धैर्य) से
8. किससे बुद्धिमान् होता है?	वृद्ध पुरुषों की सेवा से
श्लोक 49	**श्लोक 50**
9. ब्राह्मणों में देवत्व क्या है?	वेदों का स्वाध्याय ही देवत्व है
10. उनमें सत्पुरुषों का सा धर्म क्या है?	तप
11. उनका मनुष्य-भाव क्या है?	मरण
12. असत्पुरुष का सा आचरण क्या है?	परनिन्दा
श्लोक 51	**श्लोक 52**
13. क्षत्रियों में देवत्व क्या है?	बाण-विद्या
14. उनमें सत्पुरुषोचित धर्म क्या है?	यज्ञ-सम्पादन
15. उनका मनुष्य-भाव क्या है?	भय
16. उनमें असत्पुरुषों सा आचरण क्या है?	दु:खियों का परित्याग
श्लोक 53	**श्लोक 54**
17. कौन एक वस्तु यज्ञीय साम है।	प्राण ही यज्ञीय साम है
18. यज्ञीय यजु कौन है?	मन ही यज्ञीय यजु है
19. कौन एक वस्तु यज्ञ का वरण करती है?	एक मात्र ऋचा
20. यज्ञ किसका अतिक्रमण नहीं करता?	उसी अर्थात् ऋचा का
श्लोक 55	**श्लोक 56**
21. कृषकों के लिये कौन-सी वस्तु श्रेष्ठ है?	वर्षा
22. बोने वालों के लिये क्या श्रेष्ठ है?	बीज
23. धनियों के लिए क्या श्रेष्ठ है?	गोपालन, पोषण, संग्रह
24. सन्तानोत्पादन करने वाले के लिये क्या श्रेष्ठ है?	पुत्र

श्लोक 57	**श्लोक 58**
25. श्वास लेते हुये कौन जीवित नहीं है।	जो देव, अतिथि, परिवार, पितर और आत्मा-पाँचों का पोषण नहीं करता।
श्लोक 59	**श्लोक 60**
26. पृथ्वी से भारी क्या है?	माता
27. आकाश से ऊँचा क्या है?	पिता
28. वायु से भी तेज चलने वाला क्या है?	मन
29. और तिनकों से भी अधिक (असंख्य) क्या है?	चिन्ता तिनकों से भी अधिक (अनन्त) है।
श्लोक 61	**श्लोक 62**
30. कौन सोने पर भी आँख नहीं मूँदता?	मछली
31. उत्पन्न होकर भी कौन चेष्टा नहीं करता?	अण्डा
32. किसमें हृदय नहीं है?	पत्थर में हृदय नहीं है।
33. वेग से कौन बढ़ता है?	नदी वेग से बढ़ती है।
श्लोक 63	**श्लोक 64**
34. प्रवासी का मित्र कौन है?	सहयात्रियों का समुदाय
35. गृहस्थ का मित्र कौन है?	पत्नी
36. रोगी का मित्र कौन है?	वैद्य
37. मरणासन्न का मित्र कौन है?	दान
श्लोक 65	**श्लोक 66**
38. समस्त प्राणियों का अतिथि कौन है?	अग्नि
39. सनातन धर्म क्या है?	अविनाशी, नित्य-धर्म
40. अमृत क्या है?	गो-दुग्ध अमृत है।
41. यह जगत् क्या है?	वायु
श्लोक 67	**श्लोक 68**
42. अकेला कौन विचरता है?	सूर्य
43. उत्पन्न होकर पुनः कौन उत्पन्न होता है?	चन्द्रमा
44. शीत की औषधि क्या है?	अग्नि
45. महान् आवपन क्षेत्र क्या है?	पृथ्वी
श्लोक 69	**श्लोक 70**
46. धर्म का एकमात्र साधन क्या है?	दक्षता
47. यश-प्राप्ति का उपाय क्या है?	दान
48. स्वर्ग प्राप्त करने का एकमात्र साधन क्या है?	सत्य

49. सुख का लाभ किससे होता है?	शील (सदाचार) से
श्लोक 71	**श्लोक 72**
50. मनुष्य की आत्मा क्या है?	पुत्र
51. दैवकृत सखा कौन है?	स्त्री दैवकृत सहचरी है
52. उपजीवन (जीवन का सहारा) क्या है?	मेघ
53. और इसका परम आश्रय क्या है?	दान
श्लोक 73	**श्लोक 74**
54. धन्यवाद के योग्य पुरुष में उत्तम गुण क्या है?	दक्षता
55. धनों में उत्तम धन क्या है?	शास्त्र-ज्ञान
56. प्रधान लाभ क्या है?	आरोग्य
57. उत्तम सुख क्या है?	सन्तोष
श्लोक 75	**श्लोक 76**
58 लोक में श्रेष्ठ कर्म क्या है?	दया
59. नित्य फल वाला धर्म क्या है?	वेदोक्त धर्म
60.किसको वश में रखने से मनुष्य शोक नहीं करते?	मन को
61. किनके साथ हुई मित्रता नष्ट नहीं होती?	सज्जनों के साथ
श्लोक 77	**श्लोक 78**
62. किस वस्तु को त्याग कर मनुष्य प्रिय होता है?	अभिमान को त्याग कर
63. किसको त्याग कर शोक नहीं करता?	क्रोध को
64. किसको त्याग कर वह अर्थवान् होता है?	काम को
65. किसे त्याग कर सुखी होता है?	लोभ को
श्लोक 79	**श्लोक 80**
66. ब्राह्मण को किसलिये दान दिया जाता है?	धर्म के लिये
67. नट और नर्तकों को क्यों दान देते हैं?	यश के लिये
68. सेवकों को दान (वेतन) क्यों देते हैं?	भरण पोषण के लिये
69. राजाओं को दान (धन) क्यों देते हैं?	भय के कारण
श्लोक 81	**श्लोक 82**
70. जगत् किस वस्तु से ढका है?	अज्ञान से
71. जगत् किस कारण से प्रकाशित नहीं होता?	तमोगुण के कारण
72. मनुष्य मित्रों को क्यों त्याग देता है?	लोभ के कारण
73. स्वर्ग में किस कारण नहीं जाता?	आसक्ति के कारण

श्लोक 83	**श्लोक 84**
74. पुरुष मृत कब कहा जाता है?	दरिद्रता को प्राप्त होने पर
75. राष्ट्र किस प्रकार मर जाता है?	जब कोई राजा न हो
76. श्राद्ध किस प्रकार मृत हो जाता है?	श्रोत्रिय ब्राह्मण के बिना
77. यज्ञ कैसे नष्ट हो जाता है?	बिना दक्षिणा के
श्लोक 85	**श्लोक 86**
78. दिशा क्या है?	सत्पुरुष दिशा है।
79. जल क्या है?	आकाश जल है।
80. अन्न क्या है?	पृथ्वी
81. विष क्या है?	प्रार्थना (कामना) इच्छा
82. श्राद्ध का समय क्या है?	ब्राह्मण ही श्राद्ध का समय है।
श्लोक 87	**श्लोक 88**
83. तप का लक्षण क्या है?	अपने धर्म में तत्पर रहना
84. दम किसे कहा जाता है?	मन का दमन
85. उत्तम क्षमा क्या है?	सर्दी, गर्मी आदि द्वन्द्वों का सहन करना
86. लज्जा क्या है?	अकरणीय काम से दूर रहना
श्लोक 89	**श्लोक 90**
87. ज्ञान किसे कहते हैं?	परम तत्त्व का यथार्थ बोध
88. शम क्या कहलाता है?	चित्त की शान्ति
89. दया किसका नाम है?	सबके सुख की इच्छा रखना
90. आर्जव (सरलता) किसे कहते हैं?	समचित्त होना ही सरलता है।
श्लोक 91	**श्लोक 92**
91. मनुष्यों का दुर्जेय शत्रु कौन है?	क्रोध दुर्जेय शत्रु है।
92. अनन्त व्याधि क्या है?	लोभ अनन्त व्याधि है।
93. साधु कौन माना जाता है?	सभी का हितैषी
94. असाधु किसे कहते हैं?	दयाहीन को
श्लोक 93	**श्लोक 94**
95. मोह किसे कहते हैं?	धर्म-मूढ़ता ही मोह है
96. मान किसे कहते हैं?	आत्माभिमान ही मान है
97. आलस्य क्या है?	धर्म का पालन न करना।
98. शोक किसे कहते हैं?	अज्ञान को ही शोक कहते हैं।

श्लोक 95	**श्लोक 96**
99. स्थिरता किसे कहते हैं?	स्वधर्म में स्थिर रहना
100. धैर्य क्या है?	इन्द्रिय-निग्रह
101. परम स्नान क्या है?	मानसिक मलों का त्याग
102. दान किसे कहते हैं?	प्राणियों की रक्षा करना
श्लोक 97	**श्लोक 98**
103. पण्डित कौन है?	धर्मज्ञ
104. नास्तिक किसे कहते हैं?	मूर्ख को
105. मूर्ख कौन है?	नास्तिक
106. काम क्या है?	(वासना) जन्म मरण रूप संसार का कारण
107. मत्सर किसे कहते है?	हृदय की जलन
श्लोक 99	**श्लोक 100**
108. अहंकार किसे कहते हैं?	महान् अज्ञान को
109. दम्भ क्या है?	धर्म का मिथ्या अभिमान
110. परम दैव किसे कहते है?	दान का फल
111. पैशुन्य क्या है?	चुगलखोरी
श्लोक 101	**श्लोक 102**
112. धर्म, अर्थ, काम परस्पर विरोधी एक स्थान पर कैसे रह सकते हैं?	मनुष्य के वश में होने पर
श्लोक 103	**श्लोक 104**
113. अक्षय नरक कौन प्राप्त करता है?	(क) जो याचक ब्राह्मण को बुलाकर, फिर दान देने से मना कर दे। (ख) जो पुरुष वेद, धर्म-शास्त्र, ब्राह्मण, देवता और पितृ-धर्मों में मिथ्याबुद्धि रखता है। (ग) जो धन होते हुये भी न भोग करता है, और न दान करता है।
श्लोक 107	**श्लोक 108**
114. कुल, आचार, स्वाध्याय और शास्त्र इनमें से ब्रह्मत्व क्या है?	आचार
श्लोक 112	**श्लोक 113**
115. मधुर वचन बोलने वाले को क्या मिलता है?	सबका प्रेम

116. सोच विचारकर कार्य करने वाला क्या पाता है? सफलता

117. अनके मित्र वाले को क्या मिलता है? सुख

118. धर्म-निष्ठ को क्या मिलता है? सद्गति

श्लोक 114	**श्लोक 115**
119. सुखी कौन है?	जो ऋणी नहीं है, परदेश में नहीं है।
120. आश्चर्य क्या है?	सर्वदा जीवित रहने की इच्छा बना ले।
121. मार्ग क्या है?	जिस मार्ग पर महापुरुष जाते हों।
122. वार्ता क्या है?	काल के गाल में समाना।
श्लोक 119	**श्लोक 120**
123. पुरुष कौन है?	पुण्य-कर्म-जन्य कीर्ति को प्राप्त
124. सबसे बड़ा धनी होता है?	निःस्पृह, शान्त-चित्त, सुप्रसन्न, योग-युक्त, द्वन्द्वों में समान चित्त वाला ही धनी है।

7.6 यक्ष-युधिष्ठिर-संवाद (कुछ श्लोक)

सन्दर्भ तथा प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक व्यास-रचित महाभारत के वन-पर्व (आरणेय पर्व) के 313 वें अध्याय से अवतरित है। यहाँ 'यक्ष एवं युधिष्ठिर' संवाद से सम्बन्धित प्रश्नोत्तर का वर्णन किया गया है।

1. **किंस्विदादित्यमुन्नयति, के च तस्याभितश्चराः।**
   कश्चैनम् अस्तं नयति, कस्मिंश्च प्रतितिष्ठति ।।

अन्वय – आदित्यम् किंस्विद् उन्नयति, तस्य च के अभितः चराः। कः च एनम् अस्तं नयति। कस्मिन् च (अयम्) प्रतितिष्ठति।

पदार्थ –आदित्यम् = सूर्य को। किंस्विद् = कौन। उन्नयति = उदित करता है। तस्य = उसके। अभितः = चारों ओर। चराः = विचरण करने वाले। कः = कौन। च = और। एनम् = इसे (सूर्य को) अस्तम् = अस्त। नयति = ले जाता है। कस्मिन् = किसमें। प्रतितिष्ठति = प्रतिष्ठित हैं।

हिन्दी अनुवाद और व्याख्या – यक्ष युधिष्ठिर से प्रश्न पूछता है – सूर्य का उदय कौन (क्षितिज) में करता है? और उसके चारों ओर विचरण करने वाले कौन हैं? इसे अस्त कौन करता है? और यह किसमें (किस आधार पर) स्थित है?

यक्ष के प्रश्न का अभिप्राय यह है कि ऐसी कौन-सी सत्ता या शक्ति है जो क्षितिज में सूर्य को उदित करती है और ऊपर आकाश में ले जाती है? सूर्य के चारों ओर विचरण कौन करते हैं? सूर्य को अस्त करने वाला कौन है और वह आधार क्या है जिस पर यह सूर्य स्थित है?

व्याकरण – आदित्यम् = अदितेः अपत्यम् पुमान्, अदिति+ण्यः, द्वि॰ वि॰ एकवचन। उन्नयति = उद्+नयति = परसवर्ण सन्धि। तस्याभितश्चराः = तस्याभितः+चराः = स्तोः श्चुना श्चुः,श्चुत्व। कश्चैनम् = कः+च, विसर्ग सन्धि। कश्च+एनम् = वृद्धि सन्धि।

विशेष – यक्ष ने एक ही प्रश्न में चार उप प्रश्न किये हैं, जिनमें से एक मूल प्रश्न सूर्य से सम्बन्धित है।

2. **ब्रह्मादित्यमुन्नयति, देवास्तस्याभितश्चराः।**
धर्मश्चास्तं नयति सत्ये च प्रतितिष्ठति।।

अन्वय :– ब्रह्म आदित्यं उन्नयति। देवाः तस्य अभितः चराः। धर्मः च तम् अस्तम् नयति। सत्ये च प्रतितिष्ठति।

पदार्थ – ब्रह्म = परमात्मा। देवाः = देवता। अभितः = चारों ओर। धर्मः = कर्तव्य, (लोकाधार) अस्तं नयति = अस्त करता है। सत्ये = सत्य में। प्रतितिष्ठति = अवस्थित है।

हिन्दी अनुवाद और व्याख्या – युधिष्ठिर यक्ष के द्वारा पूछे गये प्रश्न का उत्तर इस प्रकार देते हैं – ब्रह्म सूर्य को उदित करता है। देवता उसके चारों ओर विचरण करते हैं और धर्म उसे अस्त करता है वह सत्य में प्रतिष्ठित है। सूर्य के उदित होने के पीछे अनादि ब्रह्म की शक्ति है कहा भी है – ''**यस्य भासा सर्वमिदं विभाति**'' सूर्य को ब्रह्म का नेत्र भी कहा गया है। देवता उसके चारों ओर भ्रमण करते हैं। अस्त होना उसका धर्म है अर्थात् नियम है। जिसके अन्तर्गत उसे अस्त होना ही पड़ता है। सूर्य सत्य में प्रतिष्ठित है अर्थात् अन्तरिक्ष में सूर्य का ठहरना प्रकृति का सत्य है, ऋत है।

विशेष – यहाँ केवल आध्यात्मिक आस्था ही नहीं है उसके पीछे एक प्राकृतिक एवं वैज्ञानिक तथ्य भी है। ब्रह्माण्ड के मूल में विद्यमान परम तत्त्व ही ब्रह्म है। जड़ प्रकृति (सूर्यादि सभी) में वही गति उत्पन्न करता है। विज्ञान उसे प्राकृतिक शक्ति कहता है।

3. **किमेकं यज्ञियं साम, किमेकं यज्ञियं यजुः।**
का चैषां वृणुते यज्ञं, कां यज्ञो नातिवर्तते।।

अन्वय – एकं यज्ञियं साम किम्। एकं यज्ञियं यजुः किम्। एषां च का यज्ञं वृणुते। कां (च) यज्ञः न अतिवर्तते?

पदार्थ – यज्ञियम् = यज्ञ-विषयक, साम = सामवेद का मन्त्र, यजुः = यज्ञीय प्रार्थना, वृणुते = वरण करती है, काम् = किस वस्तु को, अतिवर्तते = अतिक्रमण करता है।

हिन्दी अनुवाद और व्याख्या – प्रस्तुत श्लोक में यक्ष युधिष्ठिर के समक्ष एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न प्रस्तुत करते हुए कहता है –यज्ञ-सम्बन्धी साम (सामवेद का मन्त्र) कौन सा है? यजुर्वेद का यज्ञ-सम्बन्धी मन्त्र कौन सा है? और कौन वस्तु यज्ञ का वरण करती है? तथा यज्ञ किसको (एक वस्तु का) अतिक्रमण नहीं कर सकता?

भाव यह है कि सामवेद के अनेक यज्ञीय मन्त्रों में से सर्वोत्कृष्ट और महत्त्वपूर्ण मन्त्र कौन सा है? उसी तरह यजुर्वेद के यज्ञीय पाठ्य-मन्त्र में से अपरिहार्य मन्त्र कौन सा है? यज्ञ को स्वीकृति किससे मिलती है? और स्वयं यज्ञ-क्रिया किसकी उपेक्षा नहीं कर सकती?

व्याकरण – यज्ञ + घ (इय) नपुंसक लिंग, प्र॰ वि॰, ए॰ व॰, यजुः = इज्यते अनेन, यज् + उसि। वृणुते = वृञ् + लट्, प्रथम पुरुष, एकवचन।

विशेष – प्रष्टव्य प्रश्नों में यक्ष की जिज्ञासा है कि मानवीय जीवन में यज्ञ की अवधारणा क्या है तथा वैज्ञानिक दृष्टि से वेदत्रयी की उसके जीवन में क्या उपयोगिता है?

4. **प्राणो वै यज्ञियं साम मनो वै यज्ञियं यजुः।**
ऋगेका वृणुते यज्ञं तां यज्ञो नातिवर्तते।।

अन्वय – वै प्राणः यज्ञियं साम, वै मनः यज्ञियं यजुः। एका ऋग् यज्ञम् वृणुते, यज्ञः ताम् न अतिवर्तते।

पदार्थ – प्राण = आध्यात्मिक जीवन के निमित्त श्वास अथवा जीवन। यज्ञियम् = यज्ञ से सम्बन्धित। साम = सामवेदीय मन्त्र। वै = निश्चय ही, मनः = मन (अन्तरिन्द्रिय संकल्प, विकल्प रूप वाला)। यजुः = यजुर्वेदीय मन्त्र, एका = एकमात्रम्। ऋक् = ऋग्वेदीय मन्त्र, (यज्ञपरक)। वृणुते = वरण करता है। यज्ञः = याग। ताम् = ऋचाम्। न = नहीं। अतिवर्तते = अतिक्रमण करता है।

हिन्दी अनुवाद और व्याख्या – युधिष्ठिर यक्ष के प्रश्न का इस प्रकार उत्तर देते हैं– प्राण ही यज्ञीय साम है। मन ही यज्ञीय यजु है। एकमात्र ऋचा ही यज्ञ का वरण करती है और यज्ञ उसका अतिक्रमण नहीं करता।

अर्थात् प्राण नामक वायु के बिना सामगायन असम्भव है; अतः प्राण ही साम है। मनन के बिना यजुर्वेदीय मन्त्रों का पाठ निरर्थक है; अतः मन ही यजुः है। ऋक् अर्थात् स्तुतिपरक मन्त्र ही यज्ञीय कर्मकाण्ड का चयन करते हैं तथा मन्त्र यज्ञ के अधीन नहीं, अपितु यज्ञ मन्त्राधीन है।

व्याकरण – प्राणः = प्र+ अन् + अच् (प्रत्यय), प्रथमा विभक्ति, एकवचन। मनः = मन्यते अनेन; मन् + असुन् (नपुंसकलिंग), प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

विशेष – आशय यह है कि प्राण को ही ब्रह्म रूप में मानते हैं। साम अनादि गायन है। जिसमें नाद रूप में स्वयं ब्रह्म विद्यमान है। गीता की उक्ति है – **'वेदानां सामवेदोऽस्मि'**। मन्त्र एवं यज्ञ का परस्पर अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। मन्त्रों से यज्ञादि कर्मकाण्ड सम्पादित होते हैं।

5. **वर्षमावपतां श्रेष्ठं बीजं निवपतां वरम्।**
   गावः प्रतिष्ठमानानां पुत्रः प्रसवताम् वरः।।

अन्वय– आवपताम् वर्षम् श्रेष्ठम् निवपतां बीजं वरम्, प्रतिष्ठमानानां गावः (वरम्) प्रसवतां पुत्रः वरः।

पदार्थ – वर्षम् = वर्षा। गावः = गायें। वरम् = श्रेष्ठ। आवपताम् = कृषि करने वालों के लिए, प्रतिष्ठमानानाम् = प्रतिष्ठा प्राप्त पुरुषों के लिए।

हिन्दी अनुवाद और व्याख्या – यक्ष के प्रश्नों का युधिष्ठिर इस प्रकार उत्तर देते हैं –

जो लोग कृषि व्यवसाय करते हैं, उनके लिए वर्षा श्रेष्ठ होती है, वपन क्रिया करने वालों के (बोने वालों के लिए) लिए बीज श्रेष्ठ है। प्रतिष्ठा प्राप्त करने वालों के लिए (धनिकों के लिए) गाय-बैल (का पालन-पोषण) श्रेष्ठ है तथा सन्तानोत्पत्ति करने वालों के लिए पुत्र-प्राप्ति श्रेयस्कर है।

वर्षा के बिना कृषि नहीं हो सकती। बीज न हों तो कुछ बोया नहीं जा सकता। गाय आदि पशुओं के व्यवसाय से समाज में प्रतिष्ठा बढ़ती है तथा सन्तानों में पुत्र की उत्पत्ति अधिक कल्याणकारी है।

व्याकरण – वर्षम् = वृष्+अच्। गावः = 'गो' प्रथमा वि॰, बहुवचन। पुत्रः = पुम्-त्राम्नः नरकात् त्रायते इति।

विशेष – युधिष्ठिर के द्वारा यक्ष के प्रश्नों के दिए गए उत्तर भ्रान्ति-रहित हैं, क्योंकि भूमि जल से नरम होकर ही जुताई के योग्य होती है; अतः वर्षा अपेक्षित होती है, फिर उसमें वपन के लिए (बोने के लिए) उत्तम प्रकार का बीज चाहिए। महाभारत काल में गोपालन सर्वोत्तम व्यवसाय माना जाता था, इसीलिए गायों के हरण हो जाने पर प्रायः युद्ध हो जाते थे। गीता में स्पष्टतया यही अभिव्यक्ति होती है कि –

यज्ञात् भवति पर्जन्यः पर्जन्यादन्नसम्भवः।

6. **इन्द्रियार्थान् अनुभवन् बुद्धिमान् लोक-पूजितः।**
सम्मतः सर्वभूतानामुच्छ्वसन् को न जीवति।।

अन्वय :– इन्द्रियार्थान्, अनुभवन्, बुद्धिमान्, लोकपूजितः, सर्वभूतानाम्, सम्मतः, उच्छ्वसन्, कः, न जीवति

पदार्थ – इन्द्रियार्थान् = इन्द्रियों के विषयों को। अनुभवन् = अनुभव करता हुआ। बुद्धिमान् = प्रज्ञावान्, बुद्धियुक्त। लोकपूजितः = जिसको संसार में सभी मनुष्यों द्वारा सम्मान दिया जाता हो। सर्वभूतानां = सारे प्राणियों का। सम्मतः = सम्मानित। उच्छ्वसन् = श्वास लेते हुए।

हिन्दी अनुवाद और व्याख्या – यक्ष युधिष्ठिर से पूछता है – इन्द्रियों के विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) को अनुभव करने वाला बुद्धिमान, संसार में सम्मानित, प्राणियों में मान्य और श्वास लेते हुए भी कौन जीवित नहीं है? अर्थात् ऐसा कौन स्त्री या पुरुष है, जो इन्द्रियों से बोलने, स्पर्श करने, देखने, सूंघने, चखने का कार्य ठीक-ठीक करता हो, बुद्धिमान भी हो, संसार में उसकी पूजा होती हो, सारे प्राणी उसका सम्मान करते हों और वह साँस लेता हो, फिर भी जिसे जीवित न कहा जा सके?

व्याकरण – इन्द्रियार्थान् = इन्द्रियाणाम् अर्थाः, तान्; षष्ठी तत्पुरुष समास। सम्मतः = सम्+मन्+क्त। उच्छ्वसन् = उद्+श्वस्+शतृ।

विशेष – वस्तुतः यक्ष ने अत्यन्त जटिल प्रश्न उपस्थित किया है, क्योंकि तन और मन से स्वस्थ एवं सम्मानित होते हुए भी एक जीवित प्राणी के लिए विशेषतः मनुष्य के लिये अनेक ऐसी स्थितियाँ हो सकती हैं, जिनमें वह साँस लेते हुए मृतवत् जीवन व्यतीत करता है।

7. **देवतातिथिभृत्यानां पितॄणामात्मनश्च यः।**
न निर्वपति पञ्चानां उच्छ्वसन् सः न जीवति।।

अन्वय –यः देवतातिथिभृत्यानाम्, पितॄणाम्, च, आत्मनः, इति, पञ्चानाम्, न निर्वपति, सः उच्छ्वसन् (अपि) न जीवति।

पदार्थ – भृत्यानाम् = परिचारकों का (सेवकों का), पितॄणाम् = पितृगणों का (माता-पिता एवं उनके सदृशों का), आत्मनः = अपना, न निर्वपति = पोषण नहीं करता। सः = वह, उच्छ्वसन् = श्वास लेते हुए भी, न जीवति = जीवित नहीं है।

हिन्दी अनुवाद और व्याख्या – युधिष्ठिर यक्ष के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि वह व्यक्ति श्वास लेते हुए भी जीवित मनुष्यों की श्रेणी में नहीं आता, जो देवता, अतिथि, आश्रित सेवक-वर्ग, माता-पिता तथा उनके सदृश अन्य पूज्यजनों का और अपना भरण-पोषण नहीं करता।

युधिष्ठिर का अभिप्राय यह है कि केवल साँस लेना ही जीवन का लक्षण नहीं है; अपितु जीवित वह व्यक्ति है जो अपने समस्त धर्मों का सम्पादन यथाविधि करे। जैसे– पूजा-हवन इत्यादि से देवताओं का, आसन, भूमि तथा जल इत्यादि आवश्यक वस्तुओं, मधुर और सच्ची वाणी द्वारा अतिथि-स्वागत, सेवा के द्वारा बड़ों का सम्मान, शरीर और मन को स्वस्थ रखने के द्वारा अपने प्रति दायित्व की पूर्ति करने से व्यक्ति सजीव दिखाई देता है, अन्यथा तो मृत के सदृश ही होता है।

व्याकरण – देवता = देव + तल् + टाप्, स्त्रीलिंग, अतिथि = अतति (गच्छति, न च तिष्ठति सुचिरम् एकस्थाने) यः सः, अत् + इथिन्। भृत्य = भृ+क्यप्; तुक्। निर्वपति = निर् + वप्+ लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

विशेष – स्पष्टतया यही कहा गया है कि जीवित वही है जो देवार्चन, अतिथि-सम्मान, भृत्यों का पालन, बड़ों की सेवा और अपने प्रति दायित्व पूर्ण कर सकता है। इसके विपरीत जो अपने ही प्रति दायित्वपूर्ति नहीं कर सकता, दूसरों का कैसे करेगा? ''**सर्वदेवमयोऽतिथिः**'' की संस्कृति अभिव्यत हो रही है। यहाँ मनुष्य को स्वार्थ और निष्क्रियता से ऊपर उठने की उत्तम शिक्षा दी गयी है।

8. **माता गुरुतरा भूमेः खात् पितोच्चतरस्तथा।**
मनः शीघ्रतरं वाताच्चिन्ता बहुतरी तृणात्।।

अन्वय – माता, भूमेः, गुरुतरा, तथा, पिता, खात्, उच्चतरः। मनः, वातात्, शीघ्रतरम्, चिन्ता, तृणात्, बहुतरी अस्ति।

पदार्थ – माता = जननी। भूमेः = पृथ्वी से। गुरुतरा = भारी। मनः = मन। बहुतरी = संख्या में बढ़कर।

हिन्दी अनुवाद और व्याख्या – माता पृथ्वी से अधिक बड़ी (गौरवशालिनी) है। पिता का स्थान आकाश से भी अधिक ऊँचा है। मन की गति वायु से अधिक तीव्र है तथा चिन्तायें संख्या में तिनकों से भी अधिक हैं।

भाव यह है कि माता का पद भूमि से अधिक गौरवशाली है, जबकि पृथ्वी सबकी आश्रयदायिनी है। इसी प्रकार सम्मान के कारण पिता का उत्कर्ष आकाश की ऊँचाई से अधिक है। मन का वेग वायु से अधिक है तथा तिनकों की तुलना में चिन्ताओं की संख्या अधिक है।

टिप्पणी – पिता = पाति, रक्षति अपत्यम्, पा + तृच्। चिन्ता = चिन्त् + अङ्., स्त्रीलिङ्ग टाप्।

विशेष – ध्यातव्य है कि महाभारत में धर्मराज युधिष्ठिर ने माता की चर्चा पिता की तुलना में पहले करके पिता से अधिक महत्त्व प्रतिपादित किया है, साथ ही पृथ्वी से भी अधिक गरिमामयी मानते हुए ऊँचा स्थान दिया है।

अथर्ववेद में '**माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः**' तथा रामायण में '**जननी जन्मभूमिश्च**' कहकर दोनों को समान महत्त्व दिया है। किन्तु महाभारत में इनकी अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्व दिया है।

9. **मत्स्यः सुप्तो न निमिषत्यण्डं जातं न चोपति।**
अश्मनो हृदयं नास्ति, नदी वेगेन वर्धते।।

अन्वय – सुप्तः, मत्स्यः, न, निमिषति। जातम्, अण्डम्, न, चोपति। अश्मनः, हृदयं, नास्ति। वेगेन नदी वर्धते।

पदार्थ – सुप्तः = सोया हुआ या सोयी हुई, मत्स्यः = मीन (मछली), न निमिषति = नेत्र-निमीलन नहीं करती अर्थात् आँखें बन्द नहीं करती, अण्डम् = अण्डा, न चोपति = चेष्टा नहीं करता, अश्मनः = पत्थर के।

हिन्दी अनुवाद और व्याख्या – युधिष्ठिर यक्ष के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहते हैं – मछली सुप्तावस्था में भी आँख बन्द नहीं करती, अण्डा (उत्पन्न होने पर भी) चेष्टा नहीं करता। पत्थर में हृदय नहीं होता तथा नदी वेग से बढ़ती है, अभिप्राय यह है कि सोते समय सभी प्राणी आँखें बन्द कर लेते हैं। लेकिन मछली ऐसा जीव है जो सोते समय पलकें नहीं मूँदती। माता के उदर से मुक्ति प्राप्त करने के बाद भी अण्डा गतिहीन रहता है। पत्थर जड़-तत्त्व होने के कारण हृदयरहित होता है तथा नदी वेग से बढ़ती है।

टिप्पणी – चोपति = चुप्, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

विशेष – युधिष्ठिर के इस उत्तर में मछली, अण्डा, पत्थर तथा नदी, वेग आदि शब्द प्रतीकात्मक प्रतीत होते हैं।

10. **सार्थः प्रवसतो मित्रम् भार्या मित्रं गृहे सतः।**
आतुरस्य भिषङ् मित्रं दानं मित्रं मरिष्यतः।।

अन्वय – प्रवसतः मित्रम् सार्थः। गृहे सतः भार्या मित्रम्। आतुरस्य मित्रम् भिषक्। मरिष्यतः च मित्रम् दानम् अस्ति।

पदार्थ – प्रवसतः = प्रवासी का, सार्थः = साथ यात्रा करने वालों का समूह, भार्या = पत्नी। दानम् = दान करना।

हिन्दी अनुवाद और व्याख्या – युधिष्ठिर यक्ष के प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार देते हैं – विदेश जाने वाले का मित्र सहयात्री समुदाय है, घर में रहते हुए की पत्नी ही मित्र है। रोगी का मित्र चिकित्सक है तथा जो मरने वाला हो, उसका मित्र (उस समय अथवा पहले किया हुआ) दान है।

अभिप्राय यह है कि मार्ग में जाने वाले व्यक्ति का वही साथी समुदाय हित-सम्पादन कर सकता है जो साथ यात्रा करता है; गृहस्थ के हर सुख-दुःख की साथी पत्नी ही हो सकती है; रोगी का मित्र चिकित्सक है, क्योंकि वही रोगी को बचा सकता है; अतः वही हितैषी सिद्ध होता है तथा दान ही मरने वाले व्यक्ति को अच्छी गति दिलाने में समर्थ है।

व्याकरण – सार्थः = णिजन्त सृ गतौ धातु से धन् प्रत्यय लगकर सार्थ बनता है (सृ+णिच्+धन्) उणादि 2-5। दानम् = दीयते यत् तद् दानम्। दा + ल्युट्।

11. **अतिथिः सर्वभूतानामग्निः सोमो गवाममृतम्।**
सनातनोऽमृतो धर्मो वायुः सर्वमिदं जगत्।।

अन्वय – अग्निः सर्वभूतानाम् अतिथिः। गवाम् सोमः अमृतम्। सनातनः धर्मः (यः सः) अमृतः। इदम् सर्वम् जगत् वायुः (अस्ति)।

पदार्थ – अग्निः = आग, सर्वभूतानाम् = सारे प्राणियों का, अतिथिः = अतिथि है, गवाम् = गायों का, सोमः = दूध, अमृतम्, = अमृत, सनातनः धर्मः = सनातन धर्म, अमृतः = अमर, इदम् = यह, जगत् = संसार, वायुः = हवा है।

हिन्दी अनुवाद और व्याख्या – धर्मराज युधिष्ठिर यक्ष के प्रश्न का इस प्रकार उत्तर देते हैं – अग्नि सारे प्राणियों का अतिथि है। गाय का दूध अमृत है। जो अमर है वही सनातन धर्म है तथा यह सारा जगत् वायु है।

युधिष्ठिर के कथन का अभिप्राय है कि प्राणियों के लिए अग्नि आवश्यक है तथा अग्नि का उत्कृष्ट रूप सूर्य की धूप में है, जिसका सभी अतिथि की तरह स्वागत करते हैं। गाय का दूध अमृत है तथा धर्म के चिरन्तन सिद्धान्त अमर होने के कारण सनातन हैं तथा वायु के अभाव में चराचर जगत् की कल्पना ही नहीं की जा सकती, अतः यह जगत् वायु-स्वरूप ही है।

व्याकरण – सोम = सु + मन्, वायुः = वाति, प्रवहति इति; वा+युक्+उण्। (उणादि 1-1) (आतो युक् चिण्कृतो)

विशेष – वायु को सम्पूर्ण संसार इसलिए कहा गया है क्योंकि इसके बिना कोई भी प्राणी जीवित नहीं रह सकता है। वायु को संसार का प्राण भी कहा गया है। अग्नि को सबका अतिथि कहना समीचीन ही है। अग्नि से अनेक तत्त्वों का आभास होता है। यथा–ऊष्मा के बिना जीवन ही सम्भव नहीं है। शरीर में पित्त अग्निस्वरूप है जो पाचन कर्म करता है। जठराग्नि स्वयं अग्नि-स्वरूप है।

बोध प्रश्न

1. **नीचे दिए गए शब्दों में से जो शब्द सही लगे उसे रिक्त स्थानों में लिखिए।**

   (श्रुतेन, स्वाध्यायः, निर्वपति, शीघ्रतरम्, आत्मा, भैषज्यम्, मानम्)

   (i) .... श्रोत्रियो भवति।

   (ii) .... एषां ब्राह्मणानां देवत्वम्।

   (iii) देवतातिथिभृत्यानां यः न .... सः उच्छ्वसन् न जीवति।

   (iv) मनः वातात् .... अस्ति।

   (v) पुत्रः मनुष्यस्य .... अस्ति।

2. **नीचे दिए गए वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कोष्ठकों में दिए गए शब्दों में से कीजिए।**

   (i) मत्स्यः सुप्तो न ....। (वेगेन, वर्धते, नमस्ति, निमिषति)

   (ii) .... न जीवति। (भुञ्जानः, म्रियमाणः, उच्छ्वसन्, अगच्छन्)

   (iii) .... तं चास्तं नयति। (धर्मः, गृहं, वातायने, सन्ध्या)

   (iv) यज्ञः .... नातिवर्त्तते। (सताम्, ऋचं, स्त्रीणां, देवानाम्)

   (v) क्षत्रियाणाम् .... देवत्वम् अस्ति। (इष्वस्त्रम्, प्रधनम्, हिंसनम्, पठनम्)

अभ्यास प्रश्न

1. **नीचे कुछ प्रश्न दिए हैं, इनके उत्तर दो या तीन पंक्तियों में दीजिए।**

   (i) यक्ष का परिचय दीजिए।

(ii) युधिष्ठिर यक्ष के पास किसलिए गए?

(iii) यक्ष-युधिष्ठिर-संवाद का महत्त्व बताइये।

(iv) यक्ष ने युधिष्ठिर से कितने प्रश्न पूछे?

(v) पांडव किस वन में किस उद्देश्य से रह रहे थे?

2. सन्धि-विच्छेद कीजिए :–

नास्ति, हित्वार्थान्, चैषाम्, पितोच्चतरः, निमिषत्यण्डं, राजेन्द्रः।

3. विग्रह-पूर्वक समास बताइए –

इन्द्रियार्थान्, राजेन्द्रः, धर्मार्थम्, स्वधर्मवर्तित्वम्।

7.7 सारांश

- यह संवाद महाभारत के किस पर्व में उपलब्ध है? इसका कथानक क्या है? युधिष्ठिर ने किस प्रकार अपने चारों भाईयों को मृत देखकर विलाप किया? युधिष्ठिर भी पानी पीना चाह रहे थे, लेकिन पानी पीने से पहले प्यास से बेहाल होने के बावजूद किस प्रकार उन्होंने यक्ष के प्रश्नों के पूरे उत्तर दिए। यही यक्ष-युधिष्ठिर-संवाद आगे चलकर किस तरह 'यक्ष-प्रश्न' के रूप में लोक में प्रसिद्ध हुआ? अब आप इन सभी की व्याख्या अच्छी प्रकार से कर सकते हैं।

- 'महाभारत' के काल की किस प्रकार विभिन्न विद्वानों के द्वारा व्याख्या की गई एवं उनकी क्या मान्यतायें रहीं, इन सभी बातों से आप भली-भाँति परिचित हो चुके हैं।

- 'महाभारत' के लेखक महर्षि वेदव्यास के सम्पूर्ण जीवन-चरित्र से आप परिचित हो गये हैं कि उनका नाम कृष्ण द्वैपायन किस प्रकार पड़ा एवं किन-किन विचारों से प्रभावित होकर उन्होंने 'महाभारत' की रचना की।

- यक्ष-युधिष्ठिर के प्रश्नोत्तर की प्रक्रिया मे कितने बार यक्ष ने प्रश्न किए, एवं उसका उत्तर युधिष्ठिर ने कितने बार में दिया, यानी प्रश्नों के स्वरूप की विस्तृत जानकारी कतिपय उत्तरों के द्वारा दी गयी है, जिससे आप प्रश्नों एवं उत्तरों के स्वरूप से भली-भाँति परिचित हो चुके हैं।

- कतिपय श्लोकों में वर्णित यक्ष-युधिष्ठिर-संवाद का विस्तृतस्वरूप से अन्वय, हिन्दी अनुवाद सहित सप्रसंग व्याख्या की गई है, एवं वे किस प्रकार भारतीय संस्कृति को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करतीं हैं, आप इन सभी व्याख्यानों से भी भली-भाँति परिचित हो चुके हैं।

7.8 शब्दावली

दृष्टिपात् – किसी वस्तु या पदार्थ को देखना।

उपादेयता – उपयोगिता, महत्त्व।

आत्मसंयम – अपने आप पर आत्म नियन्त्रण रखना।

रहस्य – छिपा हुआ, गुप्त।

छिटपुट – बिखरा हुआ।

समाविष्ट	–	मिलाना, अपने में मिलाना, समावेश करना।
विलाप	–	रोना, आँख से आँसू बहाना।
ठिठकना	–	शान्त पड़ जाना, गति धीमी होना।
परिशीलन	–	सरल रूप में व्याख्या करना।
अवधारणा	–	मान्यता, धारणा।
प्रक्षेप	–	अवशिष्ट भाग, छिटपुट भाग।

7.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. महाभारत–वनपर्व, गीता प्रेस, गोरखपुर।
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास – ए.बी. कीथ (अनुवादक : डॉ. मंगलदेव शास्त्री) मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, दिल्ली।

बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्नों के उत्तर –

1. (i) श्रुतेन (ii) स्वाध्यायः (iii) निर्वपति (iv) शीघ्रतरम् (v) आत्मा।
2. (i) निमिषति (ii) उच्छ्वसन् (iii) धर्मः (iv) ऋचम् (v) इष्वस्त्रम्।

अभ्यास प्रश्न–

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

इकाई 8 विज्ञान आधारित पाठ

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 आयुर्वेद तथा आयुर्वेद की उत्पत्ति
8.3 आयुर्वेद-सम्बन्धी संहिताएँ
8.4 चरक संहिता का महत्त्व एवं टीकाकार
8.5 चरक संहिता का स्वस्थवृत्त
8.6 सारांश
8.7 शब्दावली
8.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :–

- स्वास्थ्य-विज्ञान के विषय में जान सकेंगे।
- संस्कृत वाङ्मय में स्वास्थ्य-सम्बन्धी विशाल साहित्य से परिचित हो सकेंगे।
- आयुर्वेद क्या है? इससे क्या लाभ है? आयुर्वेद का इतिहास कितना समृद्ध है? आयुर्वेद के प्रतिपाद्य विषय का ज्ञान सम्भव हो सकेगा।
- प्राचीन चिकित्सा-पद्धति कैसी थी, मानव-जीवन कैसा था, रोगोपचार-व्यवस्था कैसी थी? इससे अवगत होंगे।
- चरक-संहिता के स्वस्थवृत्त में प्रतिपादित विषयों परिमाण अर्थात् मात्रानुसार भोजन, ऋतुचर्या एवं आहार-विहार, वेगों को नहीं रोकना तथा स्वस्थवृत्त का सम्बन्ध इन्द्रियों, उनके अर्थों तथा सर्वविध चेष्टाओं से है। स्वस्थवृत्त के नियमों का उल्लंघन रोग उत्पन्न करता है। अतः हमें इसमें प्रतिपादित नियमों का पालन करना चाहिए। इससे भलीभाँति परिचित होंगे।

8.1 प्रस्तावना

इस इकाई से पहले की इकाई में आपने 'सामाजिक विज्ञान आधारित पाठ' की विस्तृत जानकारी प्राप्त की। यह इकाई विज्ञान विषय से सम्बन्धित है। इसमें स्वास्थ्य-विज्ञान के विषय में सामान्य परिचय दिया जाएगा तथा प्राचीन भारतीय चिकित्सा-पद्धति का सामान्य ज्ञान कराया जाएगा।

वस्तुतः एक जीवनोपयोगी विषय के रूप में स्वास्थ्य-विज्ञान को प्राचीन काल से सम्मान प्राप्त होता रहा है। स्वास्थ्य-विज्ञान में मानव के स्वस्थ जीवन के विषय में विचार किया गया है।

8.2 आयुर्वेद तथा आयुर्वेद की उत्पत्ति

चारों वैदिक संहिताओं–ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद के क्रमशः चार उपवेद कहे गए हैं – आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्ववेद एवं अर्थवेद (अर्थशास्त्र)। इस प्रकार आयुर्वेद सहस्त्रों वर्ष प्राचीन है। ऋग्वेद में न केवल आयुर्वेद के जन्मदाता दिवोदास, भरद्वाज व अश्विनी कुमार आदि आचार्यों एवं ऋषियों का उल्लेख किया गया है अपितु ऋग्वैदिक जलचिकित्सा व सूर्यरश्मि-चिकित्सा के प्रचार का उल्लेख मिलता है।

आयुर्वेद की उत्पत्ति कैसे हुई, कब हुई और आयुर्वेद से क्या लाभ है? इन प्रश्नों के उत्तर देने से पूर्व यह बतलाना आवश्यक है कि 'आयुर्वेद' किसे कहते है, क्योंकि आयुर्वेद का अर्थ जाने बिना इस ओर पाठक की रुचि कदापि नहीं होगी।

ऋषियों ने लिखा है 'शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा के संयोग या मेल को आयु अर्थात् उम्र कहते हैं और जिस शास्त्र से आयु का ज्ञान और उसकी प्राप्ति होती है, उसे आयुर्वेद कहते हैं'। चरक मुनि ने स्वयं लिखा है –

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानञ्च तत्र यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते।।

जिससे आयु के हिताहित का ज्ञान और उसका परिणाम मालूम हो, उसे **आयुर्वेद** कहते हैं–

आयुर्हिताहितं व्याधिं निदानं शमनं तथा।
विद्यते यत्र विद्वद्भिः स आयुर्वेद उच्यते ।।

जिसमें आयु का हित, अहित, रोग का निदान और शमन हो – उसको विद्वान् आयुर्वेद कहते हैं।

आयुर्वेद की उत्पत्ति के विषय में परम्परा से प्रसिद्ध है कि आयुर्वेदशास्त्र के प्रथम उपदेष्टा सृष्टिकर्ता ब्रह्मा हुए। बहुत समय तक यह उपयोगी ज्ञान देवलोक तक ही सीमित रहा। बाद में इन्द्रादि देवों से उपकारी ऋषियों ने दीक्षा प्राप्त कर उसे मर्त्यलोक में फैलाया। आयुर्वेद का सार लेकर ब्रह्मदेव ने अपने नाम से एक ग्रन्थ रचा और उसका नाम 'ब्रह्मसंहिता' रखा जिसमें एक लाख श्लोक थे, पर आज वह अनुपलब्ध है। ब्रह्मदेव से दक्ष प्रजापति ने, दक्ष प्रजापति से अश्विनीकुमारों ने तथा अश्विनीकुमारों से इन्द्र ने यह विद्या सीखी। इन्द्र से भरद्वाज ने, भरद्वाज से आत्रेय ने आयुर्वेद सीखा। उन्होंने अग्निवेश, भेड़, जातुकर्ण, पराशर, क्षारपाणि, हारीत आदि को आयुर्वेद की शिक्षा दी। अथर्ववेद में अनेक रोगों के लक्षण, निदान और चिकित्सा का सूक्ष्म विवेचन है। विभिन्न रोगों के निवारण के लिए विविध द्रव्यों का उपयोग किया जाता था। जैसे – कुष्ठ के द्वारा तक्म ज्वर नष्ट किया जाता था। नितन्नी के प्रयोग से बाल बढ़ाए जाते थे। रजनी के प्रयोग से कुष्ठ का निदान होता था। सूर्यरश्मियों की कृमिनाशक शक्ति का ज्ञान उस समय था। वैद्य जानते थे कि शरीर के अनेक अंग और जंगली औषधियाँ कृमियों के आश्रय-स्थान हैं और कृमि अनेक प्रकार के होते हैं। रोहिणी के प्रयोग से टूटी हुई हड्डी को जोड़ दिया जाता था। मच्छरों का नाश करने के लिए वनस्पति का प्रयोग किया जाता था। अपामार्ग, पिप्पली, अरुन्धती औषधियों से अनेक रोगों का निदान किया जाता था। आयुर्वेद में निम्नलिखित आठ प्रतिपाद्य विषयों का होना स्वीकार किया है –

(1) शल्य (Major Surgery)

(2) शालक्य (Minor Surgery)

(3) कायचिकित्सा (Healing of Disease)

(4) भूत विद्या (Demonology)

(5) कौमार भृत्य (Children's Disease)

(6) अगद तंत्र (Toxicology)

(7) रसायन तंत्र (Elixirs)

(8) वाजीकरण तंत्र (Aphrodisiac)

पतञ्जलि ने वेदांगों, इतिहास, पुराण और आप्तोवाक्य के साथ-साथ वैद्यक का भी निर्देश करते हुए आयुर्वेदशास्त्र की प्राचीनता सिद्ध की है। बौद्ध परम्परा मे जीवक का उल्लेख है, जिसने तक्षशिला विश्वविद्यालय में सात वर्ष तक चिकित्साशास्त्र का अध्ययन किया था। महावग्ग में यह भी उल्लेख है कि उसने किसी सेठ के उदर-विकार को दूर करने के लिए उसके उदर का शल्यकर्म कर आँतों को पुनः यथास्थिति कर दिया था। इन्होंने वैशाली, साकेत, उज्जयिनी आदि प्रदेशों मे जाकर चिकित्सा की थी।

आयुर्वेद की निरुक्ति करने पर ज्ञात होता है – आयुषो वेदः =आयुर्वेदः अर्थात् जो आयु का वेद हो उसे आयुर्वेद कहते हैं। आयु के सम्बन्ध में चरक की धारणा यह है– शरीर, इन्द्रिय (कर्मेन्द्रिय तथा ज्ञानेन्द्रिय), और आत्मा के संयोग को आयु कहते हैं। इसके पर्यायवाची शब्द हैं – धारि, जीवित, नित्यग, अनुबन्ध।

शरीरेन्द्रियसत्वात्मसंयोगो धारि जीवितम्।
नित्यगश्चानुबन्धश्च पर्यायैरायुरुच्यते।। चरक सूत्र 1.42 ।।

दूसरा शब्द है <u>वेद</u> इसकी सिद्धि अनेक धातुओं से होती है। यथा – विद् ज्ञाने = वेत्ति। विद् विचारणे = विन्ते। विद् सत्तायाम् = विद्यते। विद्लृ लाभे = विन्दति विन्दते वा। अर्थात् जो आयु के सम्बन्ध में जाने, विचार कर सके, जो आयु के लिए है और जिससे आयु का लाभ हो उसको आयुर्वेद कहते हैं।

महर्षि चरक ने आयुर्वेद को शाश्वत कहा है, क्योंकि इसका सम्बन्ध आयु के आरम्भ से अन्त तक है –

सोऽयमायुर्वेदः शाश्वतो निर्दिश्यते, अनादित्वात् स्वभावसंसिद्ध-लक्षणत्वात् भावस्वभावनित्यत्वाच्च – चरकसूत्र 30/25

आचार्य सुश्रुत की मान्यता इस प्रकार है – यह आयुर्वेद अथर्ववेद का उपांग है। इसकी रचना स्वयंभू ब्रह्मा ने प्रजाओं को उत्पन्न करने के पूर्व ही कर ली थी–

इह खलु आयुर्वेदो नाम यदुपाङ्गमथर्ववेदस्यानुत्पाद्यैव प्रजाः
श्लोकशतसहस्त्रमध्यायसहस्त्रं च कृतवान् स्वयम्भूः। सुश्रुतसूत्र 1/3

आयुर्वेद के इतिहास के अध्ययन करने से यह भली-भाँति विदित होता है कि आयुर्वेद की विभिन्न परम्परायें हैं।

बोध प्रश्न 1

(i) नीचे दिए गये प्रश्नों का सही उत्तर दीजिए।

(क) आयुर्वेद किस वेद का उपवेद है –

(i) यजुर्वेद

(ii) सामवेद

(iii) ऋग्वेद

(ख) आयुर्वेद के प्रथम उपदेष्टा हैं –

(i) पराशर

(ii) क्षारपाणि

(iii) भेड़

(iv) ब्रह्मा

(ग) ब्रह्मदेव द्वारा रचित ग्रन्थ का नाम है –

(i) चरक संहिता

(ii) ब्रह्म संहिता

(iii) धनुर्वेद संहिता

(iv) अष्टांगहृदय

(ii) नीचे दिए गए कथन में सही गलत बताइए –

(क) दक्ष प्रजापति ने ब्रह्मदेव से आयुर्वेद सीखा।

(ख) अनेक रोगों के लक्षण, निदान, चिकित्सा का विवेचन यजुर्वेद में है।

(ग) आयुर्वेद को शाश्वत माना गया है।

(घ) जीवक ने नालन्दा विश्वविद्यालय में आयुर्वेद की शिक्षा ली थी।

(iii) नीचे दिये गए प्रश्नों का उत्तर एक पंक्ति में दीजिए –

(क) आयुर्वेद किसे कहते हैं?

....

(ख) आयुर्वेद की तीन परम्परायें बताइए।

....

(ग) जीवक ने कहाँ-कहाँ जाकर चिकित्सा की थी?

....

(घ) आयुर्वेद का प्रतिपाद्य विषय बताइए?

....

8.3 आयुर्वेद-सम्बन्धी संहितायें

चरकसंहिता – वस्तुतः चरकसंहिता ही आयुर्वेद-सम्बन्धी उपलब्ध प्राचीन संहिताओं में से सर्वाधिक प्राचीन व प्रसिद्ध मानी जाती है और इसके रचयिता चरक कनिष्क के वैद्य थे। कुछ विद्वान्, इसे दृढ़बल की कृति मानते हैं। कुछ विद्वान् चरकसंहिता को भेड़ या भेल के सहपाठी पुनर्वसु आत्रेय के शिष्य अग्निवेश द्वारा विषयों पर लिखे गए कुछ तन्त्रों का ही परिवर्तित रूप मानते हैं। किन्तु अधिकांश विद्वान् इसे ही आयुर्वेद-सम्बन्धी सर्वाधिक प्राचीन संहिता मानते हैं। **श्री प्रफुल्ल चन्द्र राय** ने चरक को स्पष्टतया बौद्ध युग से पूर्ववर्ती कहा

है और **डॉ. रामजी उपाध्याय** ने भी उनका समय ईसा के पूर्व माना है तथा **डॉ. एस.एन. दास गुप्ता** ने दूसरी शती ई. माना है। अन्ततः 2 शती ई. पूर्व मान्य है।

वर्तमान चरकसंहिता आठ भागों में विभक्त है और उसके (1) प्रथम भाग सूत्रस्थान में औषधादि रोग-प्रतिकार, भोजन और वैद्य के कर्तव्यों का निरूपण किया गया है। (2) निदान-स्थान का सम्बन्ध आठ मुख्य रोगों से हैं। (3) विमान-स्थान का सम्बन्ध सामान्य रोग-विज्ञान और आयुर्वैदिक अध्ययन से है, इसमें नवोपनीत छात्र के आचरण-सम्बन्धी नियम दिए गए हैं, उसे अपनी सम्पूर्ण शक्ति अपने अध्ययन में लगानी चाहिए। जीवन के लिए भय उपस्थित होने पर भी रोगी को हानि नहीं पहुँचानी चाहिए। रोगी को स्त्री के प्रति या उसकी वस्तुओं के प्रति बुरे विचार नहीं करना चाहिए, अपने आचार-व्यवहार में गम्भीर और संयत होना चाहिए, अपने रोगी को अच्छा करने में मनसा-वाचा-कर्मणा तत्पर होना चाहिए। रोगी के घर की प्रवृत्तियों को बाहर प्रकाशित नहीं करना चाहिए।

(4) शरीर-स्थान में शरीर-रचना-विज्ञान और भ्रूण-विज्ञान का निरूपण किया गया है। (5) इन्द्रिय-स्थान में निदान और पूर्व कथन अथवा साध्यासाध्य विचार का निरूपण है। (6) चिकित्सा-स्थान में विशिष्ट चिकित्सा का प्रतिपादन किया गया है। (7) कल्पस्थान तथा (8) सिद्धि-स्थान में सामान्य चिकित्सा का निरूपण किया गया है।

चरकसंहिता आयुर्वेद या चिकित्सा-विज्ञान तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि उसमें दर्शनशास्त्र, सांख्य की भी चर्चा हुई है। उसका रचयिता न्याय व वैशेषिक मतों से भी परिचित है। ग्रन्थ का रूप यत्र-तत्र पद्यों से मिश्रित गद्यात्मक है और कदाचित् दृढ़बल द्वारा संशोधित होने के कारण उसका स्वरूप एक प्राचीन ग्रन्थ सा नहीं रहा ।

सुश्रुतसंहिता – सुश्रुत आचार्य धन्वन्तरि के शिष्य और चरक के परवर्ती थे किन्तु उन्हें चरक के समान ही प्रसिद्धि प्राप्त है। कहा जाता है कि सुश्रुतसंहिता को पहले नागार्जुन तथा बाद में वाग्भट ने संशोधित तथा परिवर्द्धित किया है। महाभारत में सुश्रुत को विश्वामित्र मुनि का पुत्र कहा गया है; अतः उनका समय-निर्धारण असम्भव है।

सुश्रुतसंहिता छः भागों में विभक्त है और इसका प्रारम्भ भी चरकसंहिता की भाँति सूत्र-स्थान से होता है, जिसमें सामान्य विषयों का निरूपण किया गया है। इसका दूसरा भाग निदान-स्थान है, जिसमें रोग-विज्ञान का विवेचन है। शरीर-स्थान नामक तीसरे भाग में शरीर-विज्ञान, भ्रूण-विज्ञान व गर्भविज्ञान का निरूपण है। चिकित्सा-स्थान नामक चौथे अध्याय में रोगचिकित्सा वर्णित है। कल्पस्थान नामक पाँचवें अध्याय में विषविद्या और उत्तरस्थान या छठें भाग में ग्रन्थ की शेष पूर्ति की गई है। कुछ विद्वान् छठें भाग को बाद का प्रक्षिप्त मानते हैं। सुश्रुत एक चिकित्सक के लिए उत्कृष्ट सदाचार का पालन आवश्यक मानते हैं।

भेल या भेड़संहिता – यह संहिता अत्यन्त अव्यवस्थित रूप में प्राप्त हुई। इस संहिता का विभाग भी चरकसंहिता की ही तरह है। इसका जितना अंश सुरक्षित है, मुख्यतया श्लोकों में हैं। कुछ साथ में गद्य का भी प्रयोग है। इस संहिता के रचयिता को सुश्रुतसंहिता का ज्ञान था।

बॉवर हस्तलेख – सन् 1890 ई. में काश्गर नामक स्थान से कुछ हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुईं जो कि अनुसन्धानकर्ता बॉवर के नाम से प्रसिद्ध हैं। प्राचीन लिपि-विज्ञान के आधार पर इनका समय चौथी शताब्दी ई. माना जाता है। इसके सात निबन्ध या प्रकरण चिकित्सा-सम्बन्धी ही हैं। इसमें लहसुन के प्रयोग, नेत्रांजन, शिशु-रोग आदि का विवरण दिया गया है।

बॉवर हस्तलेख के सभी निबन्ध पद्यात्मक हैं और उनमें अपेक्षाकृत अधिक जटिल पद्धति का प्रयोग किया गया है। आत्रेय, क्षारपाणि, जातकर्ण, पराशर, भेड, हारीत नामक आयुर्वेदाचार्यों का उल्लेख है। सुश्रुत का भी नामोल्लेख है पर चरक का नाम नहीं है। इसकी भाषा प्राकृत तथा संस्कृत का मिश्रण है।

परवर्ती आयुर्वैदिक साहित्य

वाग्भट – यह सुश्रुत के परवर्ती माने जाते हैं और आयुर्वेद-परम्परा में चरक व सुश्रुत के पश्चात् इन्हें तीसरा स्थान प्राप्त है। वाग्भट नामक दो ग्रन्थकार हैं, दोनों के पिता का नाम भी समान है। प्रथम वाग्भट सिंहगुप्त के पुत्र हैं तथा उनके गुरू बौद्ध अवलोकित थे। इन्होंने अष्टांग-संग्रह नामक ग्रन्थ का निर्माण किया था। इसी के आधार पर द्वितीय वाग्भट ने 'अष्टांग-हृदय-संहिता' नामक ग्रन्थ का निर्माण किया। प्रथम वाग्भट की शैली पद्य मिश्रित गद्यात्मक है, जबति द्वितीय वाग्भट ने विशुद्ध पद्यात्मक शैली का प्रयोग किया है। महामहोपाध्याय ओझाजी ने प्रथम का समय 7वीं और द्वितीय का समय 8वीं शताब्दी माना है।

माधवकर – आठवीं या नवीं शताब्दी में इन्दुकर के पुत्र माधवकर ने '**रुग्विनिश्चय**' नामक ग्रन्थ का निर्माण किया। जो रोग-निदान-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। सिद्धियोग या वृन्दमाधव नामक एक अन्य ग्रन्थ भी रोग-निदान-सम्बन्धी प्राप्त होता है, जिसमें 'रुग्विनिश्चय' नामक ग्रन्थ का अनुसरण किया गया है। इसमें ज्वर से लेकर विषप्रयोग तक की बीमारियों के निवारणार्थ योग बतलाए गए हैं। कुछ विद्वान् माधवकर एवं वृन्द को अभिन्न मानते हैं।

चक्रपाणिदत्त – इनकी चरकसंहिता और सुश्रुतसंहिता पर लिखी गई टीकाएँ प्रसिद्ध हैं। इनके अलावा इनका **चिकित्सासारसंग्रह** नामक एक ग्रन्थ भी चिकित्सा-सम्बन्धी कहा जाता है।

मिल्हण – लगभग 1224 ई. में दिल्ली में इन्होंने **चिकित्सामृत** नामक एक ग्रन्थ की रचना की; जिसमें 2500 पद्य हैं।

नागार्जुन – इन्होंने **योगसार और योगशतक** नामक दो ग्रन्थ लिखे हैं तथा **रसरत्नाकर** भी इन्हीं का मुख्य ग्रन्थ कहा जाता है।

वोपदेव – यह केशव वैद्य के पुत्र थे और राजा हेमाद्रि (लगभग 1300) के आश्रित थे। इन्होंने शाङ्‌र्गधर पर टीका लिखी है।

अन्य ग्रन्थ – आयुर्वेद-सम्बन्धी उक्त ग्रन्थों की अपेक्षा परवर्ती ग्रन्थ काफी संख्या में हैं तथा विस्तृत भी हैं। इनमें प्रमुख हैं – तीसट की चिकित्साकालिका (14वीं शताब्दी), भावमिश्र का भावप्रकाश (16वीं शताब्दी), लोलिम्बराज का वैद्यजीवन (17वीं शताब्दी)।

इसी प्रकार विभिन्न प्रकार की व्याधियों पर लिखे गए बहुसंख्यक व्यवस्थित निबन्धों के उल्लेख भी मिलते हैं । छोटे बड़े वृक्षों की व्याधियों पर लिखा गया सुरपाल का वृक्षायुर्वेद विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

9.4 चरकसंहिता का महत्त्व एवं टीकाकार

आज आयुर्वेद की जितनी भी पूर्ण अथवा अपूर्ण उपलब्ध संहिताएँ हैं। उन सबमें कायचिकित्सा के क्षेत्र में चरकसंहिता का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि आचार्य वाग्भट ने अपनी कृति को युगानुरूप सन्दर्भ कहा है किन्तु यह उनकी अपनी उक्ति है। आयुर्वेदीय सुप्रसिद्ध ग्रन्थों के उत्तम अंशों का संकेत करते हुए किसी आलोचक ने लिखा है –

निदाने माधवः श्रेष्ठः सूत्रस्थाने तु वाग्भटः।
शरीरे सुश्रुतः श्रेष्ठः चरकस्तु चिकित्सके।।

टीकाकार– आयुर्वेदीय ग्रन्थमणिमाला में चरकसंहिता का स्थान सुमेरु की भाँति सर्वोच्च है। अतएव सभी देशों के विद्वानों ने अपनी-अपनी ज्ञान-ज्योति से इसकी नीराजना की है, किन्तु कालक्रम के परिवर्तनों से अनेक टीकाकार अपनी टीकाओं के साथ आज तिरोहित हो गए हैं, फिर भी जो ऐतिहासिक दृष्टि से उपलब्ध हैं। उसकी चर्चा प्रस्तुत की जा रही है – भट्टार हरिचन्द्रकृत **चरकन्यास**, आषाढवर्मारचित **परिहारवार्त्तिक**, स्वामिकुमारकृत **चरकपंजिका**, हिमदत्तकृत **टीका**, जेज्जट या जैयटकृत **निरन्तरपदव्याख्या**, सुधीर या सुधीश्वरकृत **टीका**, ब्रह्मदेवकृत **टीका**, ईश्वरसेनकृत **टीका**, चक्रपाणिदत्त कृत **आयुर्वेददीपिका**, श्रीकृष्ण वैद्य कृत **चरकभाष्य**, भासदत्त तथा भीमदन्तकृत **टीका**, जिनदासगाणिमहत्तर, सुदान्तसेन, कार्तिक-कुण्ड, गदाधर, वाप्यचन्द्र, बकुलेश्वरसेन, ईशानदेव, गुणाकर, शिवदाससेन, अविनाशचन्द्र, योगीन्द्रनाथसेनकृत **चरकोपस्कार**, ज्योतिषचन्द्रसरस्वती कृत **चरकप्रदीपिका**, पं॰ लालचन्द्र जी वैद्य द्वारा रचित **सर्वाङ्गसुन्दरी**, ब्रहमानन्द त्रिपाठीकृत **चरकचन्द्रिका** आदि प्रमुख हैं।

चरक – चरक शब्द अथवा नाम के सम्बन्ध में जितनी भी साधिकार कल्पनाएँ हो सकती हैं, उनका सर्वेक्षण नेपालराजगुरु पण्डित हेमराज शर्मा ने काश्यपसंहिता के उपोद्घात में किया है।

गोत्र अथवा शाखा नाम से भी चरक शब्द की प्रसिद्धि हो सकती है, या चरक का नाम संकेत के लिए रूढ हो या पश्चिम प्रदेश में नागजाति का इतिहास उपलब्ध होता हो, सम्भव है भावप्रकाश में कथित रीति के अनुसार शेषावतार चरक को माना हो। बृहज्जातक के व्याख्याकार रुद्र के मतानुसार यह वैद्यविद्या का विद्वान् था। शिक्षावृत्ति द्वारा अपनी जीविका का निर्वाह करता हुआ गाँव-गाँव में घूमकर वैद्यविद्या का उपदेश देकर तथा रोगियों की चिकित्सा द्वारा लोकोपकार करता था। इसलिए घूमने वाले भिक्षु रूप अर्थ का सहारा लेकर ही इसकी चरक नाम से प्रसिद्धि हुई हो।

आचार्य वराहमिहिर ने प्रव्रज्यायोग वर्णन-प्रसंग में 'शाक्या जीविकभिक्षुवृद्धचरका निर्ग्रन्थवन्याशनाः' इस प्रकार चरक शब्द का उल्लेख किया है। भटोत्पल ने 'चरकचक्रधरः' और रुद्र ने 'चरका योगाभ्यासकुशला मुद्राधारिणश्चिकित्सानिपुणाः पाखण्डभेदाः' इस प्रकार व्याख्यान किया है। अतः चरक शब्द के विविध प्रयोग यत-तत्र सुलभ रहे हैं किन्तु हमें जो चरक अभीष्ट है, वह है अग्निवेशतन्त्र का प्रतिसंस्कर्ता।

सम्प्रति उपलब्ध चरकसंहिता महर्षि चरक द्वारा प्रतिसंस्कृत कृति है, किन्तु इसमें अग्निवेश और दृढबल का अविस्मरणीय योगदान रहा है। इस समय बुद्ध का आविर्भाव हो चुका था, परन्तु चरक इससे पूर्णतः प्रभावित नहीं थे। यद्यपि चरक में कहीं-कहीं बौद्ध दर्शन प्रतीक रूप में दृष्टिगोचर होता है तथापि उसमें देवता, गो, ब्राह्मण, आचार्य, गुरु, वृद्धजनों की पूजा का विधान विविध प्रसंगों में प्राप्त होता है।

बोध प्रश्न 2

(i) नीचे दिए गए प्रश्नों का सही उत्तर दीजिए –

(क) आयुर्वेद की सबसे प्राचीन संहिता है –

(i) भेल संहिता।

(ii) सुश्रुत संहिता।

(iii) चरक संहिता।

(iv) हारीत संहिता।

(ख) वर्तमान चरकसंहिता विभक्त है –

(i) आठ भागों में।

(ii) पाँच भागों में।

(iii) दस भागों में।

(iv) छः भागों में।

(ग) सुश्रुतसंहिता विभक्त है –

(i) पाँच भागों में।

(ii) चार भागों में।

(iii) दस भागों में।

(iv) छः भागों में।

(ii) नीचे दिए गए कथनों में सही-गलत बताइए –

(क) चरकसंहिता पद्यात्मक है।

(ख) चरकसंहिता चिकित्सा-विज्ञान तक ही सीमित है।

(ग) अष्टांगहृदयसंहिता चिकित्सा-सम्बन्धी ग्रन्थ है।

(घ) चक्रपाणिदत्त भेलसंहिता के टीकाकार हैं।

(ङ) भावप्रकाश के रचयिता भावमिश्र हैं।

(iii) निम्न प्रश्नों का उत्तर संक्षेप में दीजिए –

(क) चरकसंहिता में कौन से विद्वानों का योगदान है? लिखिए।

(ख) भ्रूण-विज्ञान का निरूपण चरकसंहिता के किस स्थान में है?

(ग) चरक का समय-निर्धारण कीजिए।

8.5 चरकसंहिता का स्वस्थवृत्त

चरकसंहिता के सूत्रस्थान के चार अध्याय 5 से 8 तक स्वस्थवृत्त के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें क्रमशः मात्राशितीय-परिमाण के अनुसार भोजन करना अर्थात् आहार का विस्तृत एवं सम्यग् विवेचन किया गया है। षष्ठ अध्याय में ऋतुओं के अनुसार आहार एवं रोग का विवेचन किया गया है। उचित विधि एवं समय से किया गया आहार रसादि सात धातुओं का भली-भाँति पोषण करता है। उसका सारहीन अंश शरीर से बाहर निकलना चाहता है। यह बाहर निकलने की प्रवृत्ति वेग कहलाती है, जिसका सातवें अध्याय में विवेचन किया गया है। आठवाँ अध्याय स्वस्थवृत्तचतुष्क का उपसंहारात्मक है। स्वस्थवृत्त का सम्बन्ध इन्द्रियों, उनके अर्थों तथा उनकी सर्वविध चेष्टाओं से है।

आयुर्वेदशास्त्र के प्रधानतया दो प्रयोजन हैं – स्वस्थ्यस्य स्वास्थ्य-रक्षणम्, आतुरस्य विकार-प्रशमनं च अर्थात् स्वस्थ के स्वास्थ्य की रक्षा करना और रोगी के विकारों को शान्त करना। इन स्वस्थचतुष्क नामक अध्यायों में स्वास्थ्य-रक्षा-सम्बन्धी विषयों का निर्देश किया गया है।

चरक-संहिता के इन स्वस्थवृत्तनामक अध्यायों में वर्णित विषयों के कुछ प्रमुख अंशों को उद्धृत करते हुए उनकी हिन्दी व्याख्या प्रस्तुत की जा रही है –

(1) **इति ह स्माह भगवानात्रेयः ।।2।।**

सन्दर्भ – प्रस्तुत पंक्ति चरकसंहिता के सूत्रस्थान के पञ्चम अध्याय से ली गई है। चरकसंहिता के प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ में इस पंक्ति का प्रयोग किया गया है।

शब्दार्थ – इति = ऐसा, 1. इतिहास वाचक 2. किसी कथन को प्रकट करने वाला, ह = प्रसिद्ध, स्म = भूतकाल में, लिट् लकार के अर्थ में प्रयोग है।

अर्थ – भगवान् आत्रेय ने ऐसा कहा था।

टिप्पणी – भगवान् शब्द का विशेषण के रूप में आत्रेय के लिए प्रयोग किया गया है। ऐसी परम्परा अन्यत्र भी पाई जाती है – **यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः।** भगवान् के विषय में कहा गया है –

उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामगतिं गतिम्।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति।।

स्माह = स्म + आह (अकः सवर्णे दीर्घः), भगवानात्रेयः = भगवान्+आत्रेयः।

(2) **मात्राशी स्यात्। आहारमात्रा पुनरग्निबलापेक्षिणी।।3।।**

सन्दर्भ – पूर्ववत्

शब्दार्थ – मात्रा = परिमाण, अशी = खाने वाला।

अर्थ – पुरुष को उपयुक्त परिमाण से भोजन करने वाला होना चाहिए और आहार की मात्रा का निर्धारण जठराग्नि के बलाबल की अपेक्षा रखता है।

टिप्पणी – मात्राशी = मात्रा+अशी, मीयते अनया इति मात्रा, मा+ष्ट्रन्+टाप्=मात्रा। आहार के भेद – 1. भोज्य (भात-दाल आदि) 2. भक्ष्य (लड्डू, रोटी आदि) 3. चर्व्य– चबाने योग्य (दाना, लावा, खील, चना आदि) 4. लेह्य – चाटने योग्य सिखरन, चटनी आदि 5. चोष्य-चूसने योग्य आम, ईख आदि और 6. पेय – पीने योग्य शर्बत, दूध आदि।

(3) **यावदध्यस्याशनमशितमनुपहत्य प्रकृतिं यथा कालं जरां गच्छति तावदस्य मात्रा-प्रमाणं वेदितव्यं भवति ।।4।।**

सन्दर्भ – पूर्ववत्

अर्थ – भोक्ता (भोजन करने वाला) द्वारा किया हुआ पूर्वोक्त षड्विध भोजन प्रकृति (वात आदि प्रकृति) का उपघात न करके ठीक समय में पच जाता है, उतना ही उसके लिए आहार की मात्रा का प्रमाण समझना चाहिए।

टिप्पणी – अनुपहत्य – इसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है – कुक्षेरप्रपीडनमाहारेण, हृदयस्यानवरोधः पार्श्वयोरविपाटनम्, अनतिगौरवमुदरस्य, प्रीणनमिन्द्रियाणां, क्षुत्पिपासोपरमः, स्थानासनशयनगमनोच्छ्वासप्रश्वासहास्यसङ्कथासु सुखानुवृतिः, सायं प्रातश्च सुखेन परिणमनं, बलवर्णोपचयकरत्वं च, इति मात्रावतो लक्षणमाहारस्य भवति–चरकसंहिता विमानस्थान अध्याय 3, अर्थात् खाए हुए भोजन द्वारा कुक्षि पर दबाव का न पड़ना, हृदय की गति का

अवरोध न होना, पसलियों में फटने की सी पीड़ा का न होना, पेट में अधिक भारीपन का न होना, इन्द्रियों में प्रसन्नता का होना, भूख प्यास का शान्त होना, स्थान (खड़ा रहना), आसन (बैठना), सोना, चलना, श्वास, प्रश्वास, हँसना तथा बातचीत में सुख का अनुभव, दिन के भोजन का सायंकाल तक और रात्रि के भोजन का प्रातःकाल तक सुखपूर्वक परिपाक होना, बल और वर्ण की वृद्धि होना, ये सब मात्रायुक्त आहार के लक्षण हैं।

(4) **मात्रावद्ध्यशनमशितमनुपहत्य प्रकृतिं बलवर्णसुखायुषा**
योजयत्युपयोक्तारमवश्यमिति।।8।।

सन्दर्भ – पूर्ववत्

शब्दार्थ – मात्रावद् = मात्रा के अनुसार, अशितम् = खाया हुआ, उपयोक्तारम् = भोजन का उपयोग करने वाले अर्थात् खाने वाले।

अर्थ – यथोचित मात्रा के अनुसार खाया हुआ पूर्वोक्त षड्विध भोजन प्रकृति का उपघात किए बिना उपयोक्ता-भोजन का उपयोग करने वाले अर्थात् खाने वाले को बल, वर्ण, सुख तथा आयु से अवश्य युक्त करता है।

टिप्पणी – मात्रावद् अश्नीयात् – यह आदेश दिया गया है। आयुर्वेद प्रयोगात्मकशास्त्र है। उसके उपदेशों की कसौटी प्रधानतया मानव-शरीर है। इस आदेश का यथावत् पालन करने से शारीरिक बल, विद्याबल, बुद्धिबल एवं उत्तम पदार्थों के सेवन से आध्यात्मिक बल, वर्ण (कान्ति, प्रभा, तेजयुक्त वर्ण), सुख (शारीरिक तथा मानसिक), आयु (हितायु, सुखायु) की वृद्धि होती है। मात्रा के अनुसार किए हुए भोजन का व्यापक क्षेत्र है।

अब स्वस्थवृत्त को ध्यान में रखकर शरीर के लिए (नेत्रों के लिए) अञ्जन आदि विधियों को उनके गुणों के सहित आचार्य द्वारा कहा गया है। दैनिक उपयोग में आने वाले अञ्जन, अभ्यङ्ग का वर्णन आगे किया जाएगा। **'सर्वेन्द्रियाणां नयनं प्रधानम्'** इस दृष्टि से विचार करने पर सर्वप्रथम नेत्राञ्जन का विवेचन करते हैं।

(5) **सौवीरमञ्जनं नित्यं हितमक्ष्णोः प्रयोजयेत्।**
पञ्चरात्रेऽष्टरात्रे वा स्रावणार्थे रसाञ्जनम्।।15।।

सन्दर्भ – पूर्ववत्

शब्दार्थ – हितम् = हितकारक, अक्ष्णोः = आँखों के, स्रावणार्थे = निकालने के लिए।

अर्थ – आँखों के हितकारक सौवीर नामक अंजन का प्रतिदिन प्रयोग करना चाहिए। नेत्रों में संचित कफ आदि दोषों को स्रावण करने अर्थात् निकालने के लिए पाँचवें अथवा आठवें दिन रसाञ्जन का भी प्रयोग करें।

टिप्पणी – **अक्ष्णोः** इस द्विवचनान्त प्रयोग का तात्पर्य है कि दोनों आँखों में अंजन का प्रयोग करें। **पञ्चरात्रेऽष्टरात्रे वा** – इस वाक्य द्वारा महर्षि ने चिकित्सक को यह अधिकार दिया है कि वह दोषों का विचार कर काल-निर्धारण करें। वह अवधि को दोषों के आधार पर कम ज्यादा कर सकता है रसरत्नसमुच्चय में पाँच प्रकार के अंजनों का उल्लेख मिलता है – 1. सौवीराञ्जन 2. रसाञ्जन 3. स्रोतोञ्जन 4. पुष्पञ्जन 5. नीलाञ्जन।

(6) **चक्षुस्तेजोमयं तस्य विशेषाच्छ्लेष्मतो भयम्।**
ततः श्लेष्महरं कर्म हितं दृष्टेः प्रसादनम्।।6।।

सन्दर्भ – पूर्ववत्

शब्दार्थ – श्लेष्म = कफ (जलीय तत्त्व), प्रसादन = साफ, शुद्ध, निर्मल।

अर्थ – नेत्र तेजोमय होता है, उसको कफ अर्थात् जलीय तत्त्व से विशेषकर भय है। इसलिए कफनाशक चिकित्सा नेत्र को साफ, शुद्ध या निर्मल करने में हितकारक होती है।

टिप्पणी – तेजस् + मयट् प्रत्यय = तेजोमय शब्द की निष्पत्ति हुई। नेत्र शरीर का वह भाग है, जिससे देखा जाता है या जिसमें संसार की समस्त वस्तुएं प्रतिभासित होती हैं। वह सम्पूर्ण तेज से बना है या तेजस्वरूप है। इसमें विपरीत गुण वाले कफ का आक्रमण दोष है। अतः नेत्रप्रसादक अंजन का प्रयोग करना चाहिए।

(7) दिवा तन्न प्रयोक्तव्यं नेत्रयोस्तीक्ष्णम´जनम्।
विरेकदुर्बला दृष्टिरादित्यं प्राप्य सीदति।।17।।
तस्मात् स्राव्यं निशायां तु ध्रुवमञ्जनमिष्यते।।

शब्दार्थ – विरेक = विरेचन, सीदति = कष्ट का अनुभव करना।

अर्थ – रसा´जन आदि तीक्ष्ण अंजनों को दिन में आँखों में नहीं लगाना चाहिए; क्योंकि नेत्रों का विरेचन हो जाने से दुर्बल हुई दृष्टि सूर्य की गर्मी को पाकर कष्ट का अनुभव करती है। अतः रात्रि में स्रावक अंजनों का निश्चयपूर्वक प्रयोग करना चाहिए।

टिप्पणी – ध्रुवम´जनमिष्यते वाक्य का अर्थ आचार्यों ने अलग-अलग किया है। ध्रुव शब्द का इष्यते क्रिया के साथ अन्वय करके अर्थ करते हैं रात्रि में ही तीक्ष्णांजन का प्रयोग करना चाहिए। कुछ आचार्य ध्रुव को अंजन का विशेषण मानते हैं इस स्थिति में ध्रुव अंजन वे हैं, जिनका नित्य प्रति प्रयोग किया जाता है। यथा – सौवीरा´जन आदि।

बोध प्रश्न 3

(i) नीचे दिए गए प्रश्नों का सही उत्तर दीजिए –

(क) आहार के भेद हैं –

(i) पाँच

(ii) सात

(iii) छः

(iv) चार

(ख) अंजनों के प्रकार है –

(i) सात

(ii) पाँच

(iii) तीन

(iv) चार

(ii) निम्न कथनों में सही गलत बताइए –

(क) उपयुक्त मात्रा में भोजन करना चाहिए।

(ख) अत्यधिक मात्रा में भोजन करना चाहिए।

(iii) निम्न प्रश्नों का उत्तर संक्षेप में दीजिए–

(क) अंजन का प्रयोग क्यों करना चाहिए?

(ख) मात्रावद् भोजन क्यों आवश्यक है?

(ग) उपचार का काल-निर्धारण कैसे करें?

अब षष्ठ अध्याय में वर्णित हेमन्त आदि ऋतुओं में मात्रापूर्वक आहार करने पर भी रोगों की वृद्धि क्यों होती है, इस पर विचार किया जाएगा तथा प्रमुख अंशों की व्याख्या की जाएगी–

(8) तस्याशिताद्यादाहाराद् बलं वर्णश्च वर्धते।
यस्यर्तुसात्म्यं विदितं चेष्टाहारव्यपाश्रयम्।।3।।

सन्दर्भ – प्रस्तुत पंक्तियाँ चरकसंहिता सूत्रस्थान के षष्ठ अध्याय से ली गई हैं, इसमें ऋतुओं के अनुसार आहार-विहार का विवेचन किया गया है।

अर्थ– जो मनुष्य ऋतुसात्म्य (किस ऋतु में कौन सा आहार-विहार अनुकूल होता है और कौन सा प्रतिकूल इन सब बातों को जानकर उसके) के अनुसार अपनी ऋतुचर्या को चलाता है; उसी मनुष्य के अशित, पीत, लीढ तथा खादित आहार से बल वर्ण आदि की अभिवृद्धि होती है।

टिप्पणी – **ऋतुसात्म्य** – इयति अथवा ऋच्छति अर्थ में ऋतु शब्द का प्रयोग होता है, दोनों का ही अर्थ गमन अर्थात् चलना है। सात्म्य शब्द अनुकूलता अर्थ का वाचक है अर्थात् आहार-विहार में उस प्रकार चलना चाहिए जो सर्वथा अनुकूल हो।

आत्मना सह वर्तते इति सात्म्यं, तद् भावः सात्म्यम्। ऋतुसात्म्यं नाम –'यस्मिन् ऋतु यद् यद् उचितं पथ्यं वा तत् तस्मिन् तस्मिन् सात्म्यम्।

(9) इह खलु संवत्सरं षडङ्गमृतुविभागेन विद्यात्। तत्रादित्यस्योद्गमनमादानं च त्रीनृतूंछिशिरादीन् ग्रीष्मान्तात् व्यवस्येत्, वर्षादीन् पुनर्हेमन्तान्तात् दक्षिणायनं विसर्गं च ।।4।।

सन्दर्भ – पूर्ववत्

अर्थ – इस आयुर्वेद-शास्त्र में या इस ऋतुसात्म्य के प्रकरण में ऋतुविभाग के अनुसार संवत्सर (सम्पूर्ण वर्ष) को छः अंगों में विभाजित समझना चाहिए अर्थात् ऋतुएं छः होती हैं। इसमें सूर्य का उत्तर की ओर जाने का समय उत्तरायण आदानकाल शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म इन तीन ऋतुओं तक समझना चाहिए। वर्षा, शरद्, हेमन्त – इन तीन ऋतुओं का समय दक्षिणायन तथा विसर्गकाल कहा जाता है।

टिप्पणी – पूरे वर्ष को तीन भागों में विभक्त कर दिया गया है – 1. आदानकाल 2. विसर्गकाल 3. ऋतुएँ।

संवत्सर विभाग

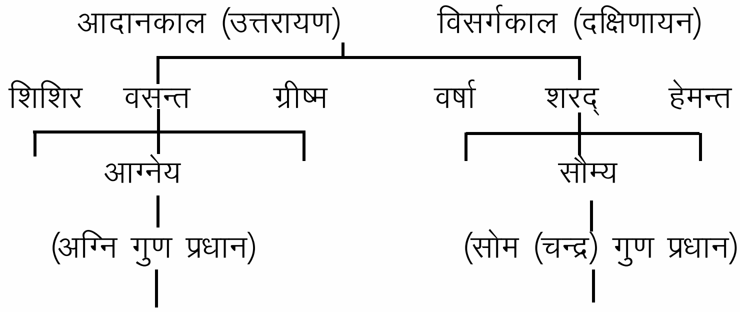

(10) तत्र रविर्भाभिराददानो जगतः स्नेहं वायवस्तीव्ररूक्षाश्चोपशोषयन्तः
शिशिरवसन्तग्रीष्मेषु यथाक्रमं रौक्ष्यमुत्पादयन्तो रूक्षान्
रसांस्तिक्तकषायकटुकांश्चाभिवर्धयन्तो नृणां दौर्बल्यमावहन्ति ।।6।।

सन्दर्भ – पूर्ववत्

शब्दार्थ – भाभिः = किरणों (आशा) से, स्नेह = जलीय, शोषयन्तः = सुखाता हुआ, रौक्ष्य = रूक्षता, अभिवर्धयन्तः = बढ़ाता हुआ, आवहन्ति = संचार करता है।

अर्थ – आदान काल में सूर्य अपनी तीव्र किरणों से संसार के जलीय भाग को आचूषित करता हुआ और तीव्र तथा रूक्ष वायु उस जलीय अंश को सुखाता हुआ शिशिर, वसन्त ग्रीष्म ऋतुओं में क्रमशः उत्तरोत्तर अधिक रूक्षता को उत्पन्न करते हुए, रूक्षता-प्रधान तिक्त, कषाय, कटु, रसों की वृद्धि करता हुआ, मनुष्यों के शरीर में दुर्बलता का संचार कर देता है।

टिप्पणी – शिशिर ऋतु में वनस्पतियों तथा प्राणियों में अल्परूक्षता, द्रव्यों में तिक्त रस की उत्पत्ति, अल्प दुर्बलता। वसन्तु ऋतु में वनस्पतियों तथा प्राणियों में मध्यम रूक्षता, द्रव्यों में कषाय रस की उत्पत्ति, मध्यम दुर्बलता। ग्रीष्म ऋतु में वनस्पतियों तथा प्राणियों में तीव्र रूक्षता, द्रव्यों में कटु रस की अभिवृद्धि, तीव्र दुर्बलता होती है। यही यथाक्रम का अभिप्राय है।

मात्राद्रव्यगुरुक्षमः प्रदीप्त जठराग्नि मात्रा गुरु = भोजन की जितनी मात्रा निर्धारित की गई है उससे कुछ अधिक तथा द्रव्य गुरु भोज्य द्रव्यों में जिन पदार्थों के पचने में विलम्ब लगता है उन पदार्थों को पचाने में भी सक्षम होता है। अर्थात् भोजन के नियमों का उल्लंघन न करके यथोचित आहार लेकर स्वास्थ्य-लाभ करना चाहिए।

चरकसंहिता सूत्रस्थान सप्तम अध्याय का नाम 'न वेगान् धारयेत्' (वेगों को नहीं रोकना चाहिए) है। उचित विधि से किया गया आहार रसादि सात धातुओं का भली भाँति पोषण करता है और उसका सारहीन अंश मल-मूत्र के रूप में शरीर से बाहर निकलना चाहता है, इनकी प्रवृत्ति जब होती है, उस समय एक विशेष प्रकार के दबाव=वेग की अनुभूति होती है, इसको रोकना नहीं चाहिए; क्योंकि वेग को रोकने से रोगोत्पत्ति होती है। प्रवाह, संचार, प्रवृत्ति अथवा गति का नाम वेग है। वेगों के रोकने से भयंकर रोग हो जाते हैं। अतः यहाँ पर संक्षेप में कुछ वेगों और उनके रोकने से होने वाले रोगों का विवेचन किया जा रहा है–

(11) न वेगान् धारयेद् धीमाञ्जातान् मूत्रपुरीषयोः।
न रेतसो न वातस्य नच्छर्द्याः क्षवथोर्न च ।।3।।

नोद्गारस्य न जृंभाया न वेगान् क्षुत्पिपासयोः।
न वाष्पस्य न निद्राया निःश्वासस्य श्रमेण च ।।4।।

सन्दर्भ – पूर्ववत्

शब्दार्थ – रेतस् = वीर्य, वात = अपानवायु, छर्द = वमन, क्षवथु = छींक, जृम्भा = जभाँई।

अर्थ – शास्त्रज्ञ पुरुष को चाहिए कि वह मूत्र, पुरीष (मल) वीर्य, अपानवायु, वमन, छींक, उद्गार, जंभाई, भूख, प्यास, आँसू, निद्रा और परिश्रम से उत्पन्न श्वास-उच्छ्वास के वेगों को न रोकें।

टिप्पणी – शास्त्र की आज्ञा का पालन सर्वथा करना चाहिए किन्तु लोकव्यवहार तथा शिष्ट-परम्परा के आधार पर कुछ वेगों को रोकना उचित समझा जाता है। जैसे – यात्रा के समय छींक का वेग, नारी के लिए अपानवायु का वेग।

(12) **कार्श्य-दौर्बल्य-वैवर्ण्यमङ्गमर्दोऽरुचिर्भ्रमः।**
क्षुद्वेगनिग्रहात् तत्र स्निग्धोष्णं लघु भोजनम् ।।20।।

सन्दर्भ – पूर्ववत्

अर्थ – भूख के वेग को रोकने से उत्पन्न रोग – कृशता, दुर्बलता, वैवर्ण्य, (चेहरे का फीका पड़ना), अंगमर्द (शरीर के अवयवों में पीड़ा का होना) अरुचि और भ्रम (चक्कर आना) होते हैं। चिकित्सा – उक्त रोगी को स्निग्ध घी, तेल आदि से बना उष्ण और हल्का भोजन देना चाहिए। भूख के वेग को रोकने से पित्त तथा वायु प्रकुपित हो जाते हैं, अतः उसका अनुलोमन करने के लिए स्निग्ध और उष्ण भोजन की व्यवस्था शास्त्र ने दी है।

(13) **लोभशोकभयक्रोधमानवेगान् निधारयेत्।**
नैर्लज्ज्येर्ष्यातिरामाणामभिध्यायाँश्च बुद्धिमान्।।26।।

सन्दर्भ – पूर्ववत्

शब्दार्थ – अतिराग = किसी विषय के प्रति अधिक आसक्ति, अभिध्या = परद्रव्य के अपहरण की इच्छा।

अर्थ – लोभ, शोक, भय, क्रोध, मान (अभिमान या अहंकार), निर्लज्जता, ईर्ष्या, किसी विषय के प्रति अधिक आसक्ति और परद्रव्य के अपहरण की इच्छा मन के इन निन्दित वेगों को बुद्धिमान् व्यक्ति को रोकना चाहिए।

अष्टम अध्याय स्वस्थवृत्त का उपसंहारात्मक अध्याय है। इस प्रकरण में इन्द्रियों से सम्बन्धित चर्चा की गई है। सभी ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों का नियामक मन है, अतः मन अतीन्द्रिय है। इसे ही 'सत्त्व' संज्ञा दी गई है क्योंकि मन तो सम्पूर्ण विषयों को ग्रहण करता है। चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, रसन और स्पर्शन – ये पाँच इन्द्रियाँ हैं, आकाश, वायु, तेज, जल तथा पृथिवी इनके द्रव्य हैं – पञ्च इन्द्रिय-स्थान, इन्द्रिय-विषय तथा इन्द्रिय-बुद्धियों का इसमें प्रतिपादन किया गया है। जिसका निम्नतालिका में स्पष्ट निर्देश है। इस तालिका से इन्द्रिय-पञ्च-पञ्चक का संक्षिप्त परिचय प्राप्त हो जाता है।

इन्द्रिय पञ्च–पञ्चक परिचय तालिका

पञ्चइन्द्रिय	पञ्चइन्द्रियद्रव्य	पञ्चइन्द्रियस्थान	पञ्चइन्द्रिय विषय	पञ्चइन्द्रिय बुद्धियाँ
1. चक्षु (आँख)	ज्योति (तेज)	अक्षिणी (दोनों आँखें)	रूप	चक्षु बुद्धि (ज्ञान)
2. श्रोत्र (कान)	ख (आकाश)	कर्णौ (दोनों कान)	शब्द	श्रोत्र बुद्धि (ज्ञान)
3. घ्राण (नाक)	भू (पृथिवी)	नासिके (दोनों नथुने)	गन्ध	घ्राण बुद्धि (ज्ञान)
4. रसना (जीभ)	अप् (जल)	जिह्वा (जीभ)	रस	रसन बुद्धि (ज्ञान)
5. स्पर्शन (त्वचा)	वायु (हवा)	त्वक् (त्वचा)	स्पर्श	स्पर्श बुद्धि (ज्ञान)

(14) **मनो मनोऽर्थो बुद्धिरात्मा चेत्यध्यात्मद्रव्यगुणसङ्ग्रहः**
शुभाशुभप्रवृत्तिनिवृत्तिहेतुश्च, द्रव्याश्रितं च कर्म, यदुच्यते क्रियेति।

सन्दर्भ – प्रस्तुत पंक्ति चरकसंहिता सूत्रस्थान के अष्टम अध्याय से ली गई है, जिसमें इन्द्रियों, उनके अर्थों तथा चेष्टाओं का प्रतिपादन किया गया है।

अर्थ – मन, मन का अर्थ (विषय) बुद्धि अर्थात् चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, रसन एवं स्पर्श बुद्धियों तथा आत्मा–यह अध्यात्म द्रव्य और गुणों का संग्रह है। ये अध्यात्म द्रव्य एवं गुण शुभ कार्यों की प्रवृत्ति में एवं अशुभ कार्यों की निवृत्ति में कारण होते हैं और द्रव्य के आश्रित कर्म भी शुभ-अशुभ कार्यों की प्रवृत्ति तथा निवृत्ति में कारण होते हैं, जिसको लोकव्यवहार में क्रिया कहते हैं।

(15) **तत्रेन्द्रियाणां समनस्कानामनुपतप्तानामनुतापाय प्रकृतिभावे प्रयतितव्यमेभिर्हेतुभिः तद्यथा–सात्म्येन्द्रियार्थसंयोगेन बुद्ध्या सम्यगवेक्ष्यावेक्ष्य कर्मणां सम्यक् प्रतिपादनेन देशकालात्मगुणविपरीतोपासनेन चेति। तस्मादात्महितं चिकीर्षता सर्वेण सर्वं सर्वथा स्मृतिमास्थाय सद्वृत्तमनुष्ठेयम्।**

शब्दार्थ – अनुपतप्तानाम् = विकारसहित, अनुतापाय = विकारों से बचाने के लिए, सम्यक् = अच्छी तरह, अवेक्ष्यावेक्ष्य = विचार करके।

अर्थ – इसलिए मन-सहित इन्द्रियों को जो विकारयुक्त नहीं हुई है अर्थात् अपनी-अपनी प्रकृति में स्थित हैं, उनको होने वाले विकारों से बचाने के लिए उपायों द्वारा प्रयत्नशील रहना चाहिए। यथा–इन्द्रिय और उनके अनुकूल विषयों के समयोग से तथा स्थिर बुद्धि से भलीभाँति विचार करके, कर्मों को ठीक प्रकार से करने से और देश, काल आत्मा के गुणों से विपरीत गुण वाले आहार-विहार आदि के सेवन से अपना हित चाहने वाले प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह स्मृतिपूर्वक सम्पूर्ण सद्वृत्त का सदैव व्यवहार करें।

टिप्पणी – इस गद्य में समनस्क इन्द्रियों को स्वस्थ रखने पर विचार किया गया है। ऐसा करने से मानव शारीरिक तथा मानसिक रोगों से अपनी रक्षा कर सकता है। स्मृतिमास्थाय–सद्वृत्त सेवन के परिणामों को याद रखकर करें क्योंकि सद्वृत्त से लाभ होता है। सद्वृत्त के अुनसार भोजन-विधि का भी वर्णन किया गया है। भोजन, पान, भोक्ता सभी का पवित्र होना आवश्यक है।

(16) **ब्रह्मचर्यज्ञानदानमैत्रीकारुण्यहर्षोपेक्षाप्रशमपरश्च स्यादिति ।।28।।**

सन्दर्भ – पूर्ववत्

अर्थ – सद्वृत्त का उपसंहार करते हुए महर्षि अग्निवेश ने कहा है – ब्रह्मचर्य, ज्ञान, दान, मित्रता, दयालुता, हर्ष, उपेक्षा और प्रक्षम (शान्ति) इन सबमें तत्पर रहे।

टिप्पणी – ब्रह्मचर्य से सभी इन्द्रियों पर व्यक्ति का एकाधिकार हो जाता है। ज्ञान से प्रज्ञापराध आदि समस्त भूलों से मुक्ति मिल जाती है। दान से इस लोक और परलोक को मनुष्य अपने वश में कर लेता है। मैत्री आदि के सम्बन्ध में स्वयं अग्निवेश लिखते हैं –

मैत्री कारुण्यमार्तेषु शक्ये प्रीतिरुपेक्षणम्।
प्रकृतिस्थेषु भूतेषु वैद्यवृत्तिश्चतुर्विधा।।

बोध प्रश्न 4

(i) **नीचे दिए गए प्रश्नों का सही उत्तर दीजिए –**

(क) मनुष्य को भोजन करना चाहिए –

(i) अत्यधिक मात्रा में।

(ii) थोड़ा सा।

(iii) मात्रा के अनुसार।

(ख) मनुष्य को वेगों को –

(i) रोकना चाहिए।

(ii) नहीं रोकना चाहिए।

(iii) ध्यान नहीं देना चाहिए।

(iv) इच्छानुसार करना चाहिए।

(ग) भूख के वेग को रोकने से –

(i) पुष्टता आती है।

(ii) मन चंचल होता है।

(iii) मन प्रसन्न होता है।

(iv) कृशता, दुर्बलता आदि आती है।

(ii) निम्न कथनों में सही गलत बताएँ –

(क) इन्द्रियाँ सात होती हैं।

(ख) शास्त्रज्ञ पुरुष वेगों को नहीं रोकता।

(ग) मनुष्य को सद्वृत्तों का पालन करना चाहिए।

8.6 सारांश

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि स्वास्थ्य-विज्ञान का मानव-जीवन में अत्यधिक महत्त्व है। यदि मनुष्य स्वस्थ ही नहीं होगा तो ये सांसारिक सुख एवं भोग किसके लिए? अतः आवश्यक है कि मनुष्य सबसे पहले अपने को हर तरह स्वस्थ रखे। जिसके लिए समस्त उपयोगी ग्राह्य एवं त्याज्य विधानों का चरकसंहिता में सम्यक् विवेचन किया गया है। भारतीय आयुर्वेद-शास्त्र संसार का सबसे अच्छा आयुर्वेद है। इसके स्वस्थवृत्त में प्रतिपादित आहार, विहार, दिनचर्या स्वास्थ्य की दृष्टि से सर्वोत्तम है। सम्यक् एवं उचित मात्रा में ऋतु के अनुसार आहार-ग्रहण, वेगों को न रोकना, पूरे संवत्सर ऋतुओं के अनुसार आहार-विहार करना, इन्द्रियों एवं मन को संयमित करते हुए सदवृत्त आचरण स्वस्थ मानव जीवन की कड़ी है। वैदिक ऋषियों ने ऐसे संयमी एवं सदाचारी के लिए ही **'जीवेम शरदः शतम्'** की कामना की है।

8.7 शब्दावली

ऋतुचर्या – ऋतु के अनुसार आचरण, व्यवहार करना।

उल्लंघन – न मानना या न पालन करना।

आप्तोवाक्य – यथार्थवक्ताओं का कथन।

भ्रूण – गर्भ में स्थित शिशु।

नेत्रांजन – आंखों का सुरमा/अंजन।

अभिन्न – एक।

व्याधि – रोग, बीमारी।

बहुसंख्यक – अनेक।

नीराजना – अर्चना, पूजा।

प्रतीक – संकेत।

जठराग्नि – पेट में रहने वाली आग, जो भोजन पचाने में सहायक होती है।

षड्विध – छः प्रकार का।

उपघात – हानि, चोट।

स्रावण – बहाना, निकालना।

ध्रुव – नित्य, स्थिर।

अधारणीय – न धारण करने योग्य, न सहन या रोकने के योग्य।

अभ्यङ्ग – मालिश।

ग्राह्य – ग्रहण करने योग्य।

त्याज्य – छोड़ने योग्य।

8.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. चरकसंहिता – मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
2. चरकसंहिता – चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
3. सुश्रुतसंहिता – चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
4. भावप्रकाश – चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
5. चिकित्साचन्द्रोदय – हरिदास एण्ड कम्पनी प्रा. लि., मथुरा।
6. आयुर्वेद का इतिहास – मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

(i) (क) (iii) ऋग्वेद (ख) (iv) ब्रह्मा (ग) (ii) ब्रह्मसंहिता

(ii) (क) सही (ख) गलत (ग) सही (घ) गलत

(iii) (क) जो आयु का वेद है उसे आयुर्वेद कहते हैं। अर्थात् जो आयु के सम्बन्ध में जाने, विचार कर सके, जो आयु के लिए है और जिससे आयु का लाभ हो।

(ख) 1. भास्कर सम्प्रदाय 2. धान्वन्तर सम्प्रदाय 3. आत्रेय सम्प्रदाय।

(ग) वैशाली, साकेत, उज्जयिनी आदि।

(घ) शल्य, शालक्य, काय-चिकित्सा, भूतविद्या, कौमार-भृत्य, अगद-तंत्र, रसायन-तंत्र, वाजीकरण-तंत्र।

बोध प्रश्न 2

(i) (क) (iii) चरक संहिता (ख) (i) आठ (ग) (iv) छः

(ii) (क) गलत (ख) गलत (ग) सही (घ) गलत (ङ) सही।

(iii) (क) चरक संहिता में अग्निवेश, दृढ़बल एवं चरक।

(ख) शरीर-स्थान में।

(ग) 2 शती ईसवी पूर्व।

बोध प्रश्न 3

(i) (क) (iii) छः (ख) (ii) पाँच

(ii) (क) सही (ख) गलत

(iii) (क) नेत्रों में संचित कफ आदि दोषों को दूर करने के लिए।

(ख) मात्रावद् भोजन उपभोक्ता को बल, वर्ण, सुख तथा आयु से युक्त रखता है।

(ग) दोषों का विचार कर काल-निर्धारण करें।

बोध प्रश्न 4

(i) (क) (iii) मात्रा के अनुसार।

(ख) (ii) नहीं रोकना चाहिए।

(ग) (iv) कृशता, दुर्बलता आदि आती है।

(ii) (क) गलत (ख) सही (ग) सही।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY